चारा पत्रिका

वर्ष 11 जनवरी-अप्रैल, 2009 अंक .....

संरक्षक
डा. के.ए. सिंह
निदेशक

संपादक मंडल
आर.बी. भास्कर
वरि. वैज्ञानिक एवं प्रभारी, राजभाषा
आर.के. भट्ट
प्रधान वैज्ञानिक
सुनील कुमार
वरि. वैज्ञानिक
सुल्तान सिंह
वरि. वैज्ञानिक
प्रभाकांत पाठक
वरि. वैज्ञानिक
प्रदीप कुमार त्यागी
तकनीकी अधिकारी (टी-6)

संपादक
केशव देव
सहायक निदेशक (राजभाषा)

प्रोडक्शन
अशोक शास्त्री
तकनीकी अधिकारी (टी-6)
डीपा, भा.कृ.अ.प., नई दिल्ली

सहयोगी
श्रीआंशकुमार द्विवेदी
निजी सचिव
अशोक कुमार सिंह
फोटोग्राफर

प्रकाशक
निदेशक
भारतीय चरागाह एवं
चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी

संपर्क सूत्र
राजभाषा अनुभाग
भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान
ग्वालियर मार्ग, झांसी 284 003 उ.प्र.

मुद्रक
प्रिंटो-वर्ल्ड, 2579, मंदिर लेन, शाीदपुर, नई दिल्ली 8 द्वारा लेज़र टाईपसेट तथा रॉयल आफसैट प्रिंटर्स, ए-89/1, नारायणा इण्डस्ट्रियल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली 8 से मुद्रित।

विषय सूची

निदेशक की कलम से

मई-अगस्त माह में किसान भाइयों के लिए सामयिक कृषि-क्रियाएं

हरे चारे के लिए संकर नेपियर घास उठाएं
- एस.एन.राम

लवणीय मृदाएं-उपचार के बाद भरपूर उपज
- शेषमणि मिश्र

पूर्वोत्तर भारत में चारा उत्पादन की नई दिशाएं
- आर.बी. भास्कर एवं प्रदीप कुमार त्यागी

चारे के सफल उत्पादन हेतु स्वस्थ बीज का महत्व
- दिवाकर बहुखंडी एवं भगवत दयाल

नये बाग लगाएं
- सुनील कुमार, ए.के. शुक्ला एवं एस. के. गुप्ता

जायद में ज्वार से हरा चारा हेतु उन्नतिशील प्रजातियां व खेती तकनीक
- सुनील कुमार, राजीव कुमार अग्रवाल एवं सुशील कुमार खरे

आंवला से शीर्ष रोपण तकनीक
- अरूण कुमार शुक्ला एवं सुनील कुमार

अर्द्धसघन पद्धति द्वारा बकरी पालन
- सनत कुमार महन्त, श्वेता सिंह एवं सुधीर कुमार

सिंचाई के लिए सही पम्प का चुनाव कैसे करें
- चन्द्र शेखर सहाय

जानिए उपज लागत घटाने के उपाय
- नीरज कुमार दुबे एवं सुनील कुमार

लोबिया एक बहुउपयोगी फसल
- जे.पी. उपाध्याय

उपयोगी चारा- बरसीम
- मनोज कुमार एवं ओम प्रकाश जोशी

सुदूर संवेदी उपग्रह छवि चित्रों द्वारा चरागाह क्षेत्रों को निरूपण एवं प्रबंधन
- जे.पी. सिंह, आर.के. अग्रवाल, कमलेश कुमार, नीरज कुशवाहा एवं आर.एस. चौरसिया

संस्थान की प्रचार-प्रसार गतिविधियां

पाठकों/किसानों के विचार

नोट- पत्रिका में दी गई तकनीकी जानकारी, आंकड़े एवं विचारों के लिए संपादक मंडल/संपादक उत्तरदायी नहीं है। इस हेतु लेखक सीधे सम्पर्क करें।

निदेशक की कलम से

गर्व की बात है कि हमारे देश में अपार पशु संपदा रही है और इसमें निरंतर वृद्धि हो रही है। हमने अपनी आपूर्ति तथा अन्य कामों के लिए पशुओं का भरपूर उपयोग सभ्यता की पहली सीढ़ी से ही कर दिया था। एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में लगभग 840 लाख पशु ऐसे हैं जिनसे काम लिया जाता है। आज भी हमारे देश में लगभग 1000 लाख हेक्टेयर भूमि पर इन पशुओं से खेती की जाती है और हर साल इनसे करीब 250,000 लाख टन का बोझा ढोने का काम लिया जाता है। आज पूरा विश्व पशुधन संसाधनों के आधार पर आर्थिक प्रगति की योजना बना रहा है। अब जमाना पशुधन क्रांति का है अगले दो दशकों में पशुधन से आजीविका, जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार व खाद्यान्य पौष्टिकता संभव है। इसके लिए हम अपने पशुधन के स्वास्थ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते।

पशुधन को स्वस्थ रखने का मतलब है भरपूर उत्पादन। इसके लिए जरूरत होती है पौष्टिक चारे की। क्योंकि दुग्ध उत्पादन में 50 प्रतिशत भागीदारी भरपेट आहार की रहती है। हमारे देश में पशुओं के लिए आवश्यक पौष्टिक आहार की हमेशा से ही कमी रही है इसके लिए हमें पशुधन एवं चारा उत्पादन के बीच सामंजस्य बनाकर चारे की समस्या के दीर्घकालीन हल खोजने के लिए जुटना होगा। सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र का लगभग 30 प्रतिशत भाग सिंचित है। इन इलाकों में जोतों का आकार भी बहुत छोटा है और छोटे एवं सीमांत किसान बड़ी संख्या में हैं। इन क्षेत्रों में चारे की खेती के लिए अतिरिक्त भूमि उपलब्ध न होने पर सघन चारा उत्पादन आवश्यक है जिसे अपनाकर हरे चारे की पैदावार बढ़ाई जा सकती है। आज हमारी क्षमता 60 प्रतिशत मांग को ही पूरा करने की है शेष कमी को पूरा करने के लिए हमें ऐसी प्रजातियां खोजनी होगी जो कम क्षेत्रफल में अधिक से अधिक पौष्टिक चारा प्रदान कर सकें।

जैसा कि हम पहले से ही कहते आए हैं कि हमारे वैज्ञानिकगण इस दिशा में सदैव चिंतन शील है। वे पशुओं के लिए चारे की नई-नई प्रजातियों की खोज में रत हैं ताकि हमारे पशुओं को भरपेट पौष्टिक चारा/आहार मिल सके। और इस खोज को किसान भाइयों तक पहुंचाने का कार्य संस्थान की **चारा पत्रिका** वखूबी निभाती आ रही है। पत्रिका के पिछले अंको में हमने किसानों व जनसामान्य को पशुओं व चारे से संबंधित अति महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराने का प्रयास किया है इसके लिए हमें किसानों, प्रसार कार्यकर्ताओं एवं संबंधित जनों से बराबर प्रतिक्रियाएं/सुझाव प्राप्त हुए हैं जिससे हमें पत्रिका को और अधिक उपयोगी बनाने में बल मिला है। प्रस्तुत **अंक** में भी चारे की विभिन्न फसलों/पशुओं एवं जनसामान्य उपयोगी जानकारी देने का प्रयास किया गया है। यह अंक निश्चित ही आपको उपयोगी साबित होगा, मुझे ऐसी आशा है। मैं इसके लेखकगणों व संपादक मंडल को धन्यवाद देता हूं। यह अंक आपको कैसा लगा ? के बारे में अपनी प्रतिक्रियाएं/सुझाव अवश्य भेजें। यदि आप भी चारे व पशुओं से संबंधित जानकारी प्रकाशनार्थ भेजना चाहते है तो वह सादर आमंत्रित है।

(कुमार अमरेन्द्र सिंह)
निदेशक

मई-अगस्त माह में किसान भाइयों के लिए सामयिक कृषि क्रियाएं...

सुरक्षित बीज भंडारण

मई

बीज भंडारण करना

जई

- जई की पिछेती प्रजातियों में फसल के पकने पर कटाई, थ्रेसिंग, बीजों को सुखाना एवं कीटनाशक से संशोधित कर बीज भंडारण करना।

बागवानी

कलमी पौधे

- फल वृक्ष लगाने हेतु पंक्ति से पक्ति एवं पौधे से पौधे की 6-8 मीटर की दूरी पर (प्रजाति/किस्मों के अनुसार) 1×1×1 घनमीटर का गड्ढ़ा इस प्रकार खोदें जिससे कि आधी-आधी मिट्टी दोनों ओर रहे सूर्य विकिरण उपचार से मिट्टी रोग/कीट मुक्त हो जाती है। ग्रीष्म कालीन सब्जियों की सिंचाई सांयकाल करें, इससे पानी की बचत एवं उपयोग अच्छा होगा।

धान

- मई के द्वितीय पखवाड़े में धान की नर्सरी की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए तथा अंतिम पखवाड़े तक नर्सरी डाल दें।
- सुगंधित प्रजाति की नर्सरी के लिए जून तक इंतजार करें। एक हेक्टेयर धान के लिये 500-800 वर्गमीटर क्षेत्र में नर्सरी डालने की आवश्यकता होती है।
- नर्सरी 1.25 मीटर से अधिक चौड़ाई की नहीं होनी चाहिए। जिससे विभिन्न क्रियाएं सुगमता से पूर्ण की जा सकें।
- जल भराव एवं जलक्रांत क्षेत्रों में जहां गहरे पानी वाले चावल की खेती/कास्त की जाती है वहां धान अथवा चावल की बुवाई फरवरी-मार्च के माह में कर दी जाती है। यथा आवश्यकता उर्वरकों का छिड़काव एवं पानी से सिंचाई करते रहने से फसल की अच्छी बढ़वार प्राप्त होती है। साथ ही जब वर्षा के पानी की अधिकता फसल को डुबोती है तब अधिक नुकसान नहीं होता।

ढेंचा की हरी खाद

- गर्मी की जुताई यदि अप्रैल में नहीं की जा सकी हो तो मई के प्रथम सप्ताह तक अवश्य करें। प्रत्येक वर्ष जुताई की तुलना में एक वर्ष के अंतराल पर जुताई उचित रहती है।
- जुताई मिट्टी पलट हल से लगभग 20 सेमी. गहरी की जानी चाहिए।
- पानी की सुविधा होने पर सनई अथवा ढैंचा की हरी खाद के लिये बुवाई करें तथा फसल 35-40 दिन की होने पर खेत में पलट दें।
- खेत की मेड़ बंदी करलें जिससे खेत की मिट्टी का बहाव रुक सके एवं खेत वर्षा का पानी सोख सके।

बहुवर्षीय घास

- चारे के लिये बोई गई जई एवं बहुवर्षीय घासों को 10-12 दिनों के अंतर पर सींचते रहें तथा बहुवर्षीय घासों एवं चरी में प्रत्येक कटाई के बाद 30 किग्रा.नत्रजन/हे. की दर से डालें। इस 30 किग्रा. नत्रजन में से 10 किग्रा. कटाई के तुरंत पश्चात् एवं शेष 20 किग्रा. कटाई के 10-12 दिन बाद डालें तो उर्वरक का असर अधिक लाभदायक होगा।
- जायद में बोई गई उर्द, मूंग आदि की तोड़ाई करें एवं सुखाकर मड़ाई करें।

चरागाह, वन एवं उद्यान चरागाह

- वन-चरागाह पद्धति स्थापना हेतु 1×1×1 घन फीट का गडढ़ा 5-8 मीटर (प्रजाति के अनुसार) की दूरी पर करें। सूर्य विकिरण से मिट्टी में रोग/कीट का नाश होता हैं। इसके साथ ही नर्सरी में लगाए गए पौधों की देख-रेख करें या वन विभाग से प्रजाति की उपलब्धता प्राप्त करें।
- जिन स्थानों पर वृक्षों की रोपाई करनी है वहां 50 सेमी. चौड़ाई एवं 1.0 मी. गहराई के गड्ढों की खुदाई करें तथा मिट्टी को गर्मी की धूप में तपने हेतु छोड़ दें जिससे कीड़े, रोगाणु आदि गर्मी से मर जाएं।
- चारे के लिये बोई गई चरी, मक्का एवं बहुवर्षीय घासों की कटाई करें।

घासों की पौधशाला डाल दें। घास की क्यारी की चौड़ाई 1.0 मीटर रखें। चित्र-

घासों की कटाई करते हुए कृषक

पशुपालन

चारे का संरक्षण

- रबी की फसलों से प्राप्त भूसे एवं लीफमील को दाना, चोकर, भूसी तथा चूनी का संतुलित मिश्रण बनाकर उसे भिगोकर पशुओं को खिलाएं।
- भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी द्वारा विकसित पूर्ण पशु आहार वाले फीडब्लाक (चारे के गट्ठर) फीडपैलेट (चारा गोली) को यथा आवश्यकता भिगोकर पशुओं को खिलाए।

संस्थान द्वारा तैयार लीफमील

- फीडब्लाक बनाने हेतु हमारे संस्थान द्वारा विकसित मशीन एवं पद्धति का प्रयोग करें।
- यदि ट्रैक्टर चालित गड्ढे बनाने वाला यंत्र (औगर) उपलब्ध हो तो और भी अच्छा है।
- मई के महीने में ऊसर भूमियों की गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए और वर्षा के पानी को निकालने का सही प्रबंध करना चाहिए, जिससे वर्षा के पानी में लवण घुल मिल जाएं और क्षार भी वर्षा के पानी के साथ घुलकर निचले स्थानों की ओर चले जाए।
- चावल के साथ चारे वाली घासों में पैरा, सीटेरिया, मछौरी घास की जड़ों की रोपाई मार्च में कर देनी चाहिए और मई के महीने में पशुओं को काटकर खिलाते रहना चाहिए।

संस्थान द्वारा विकसित फीडब्लाक मशीन

जून

मेड बंदी

- इस माह खेतों की मेड बंदी अवश्य पूरी करले।

मेडबंदी

धान

- मई माह में यदि धान की नर्सरी न डाल पाई हो तो उक्त कार्य प्रथम पखवाड़े तक पूर्ण कर लें।
- सुगंधित धान की किस्मों की नर्सरी तीसरे सप्ताह तक डालें। प्रति क्यारी (1.25×8 वर्ग मी.) में 225 ग्राम यूरिया, 500 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट एवं 50 ग्राम जिंक सल्फेट डालें।

सोयाबीन, ज्वार, मक्का एवं लोबिया

- सिंचाई की सुविधा होने पर सोयाबीन, ज्वार, मक्का की बुवाई द्वितीय या तृतीय पखवाड़े तक पूर्ण कर लें।
- चारे के लिये बोयी जाने वाली ज्वार, बाजरा, मक्का तथा लोबिया आदि के लिये तैयारी करें।
- सोयाबीन की बुवाई के लिये 75 किग्रा. बीज/हेक्टेयर पर्याप्त होता है।
- जल उपलब्ध होने पर इसकी बुवाई जून के द्वितीय पखवाड़े में करें।
- उपर्युक्त फसलों को एकल अथवा लोबिया के साथ मिलाकर बोया जा सकता है।
- चारा फसलों की बुवाई 30 सेमी. दूर पक्तियों में करें।
- बुवाई के लिये मक्का की संकर प्रजातियों के 18-20 एवं संकुल प्रजातियों के 20-25 किग्रा. मक्के के बीज प्रति हेक्टयर की आवश्यकता होती है। जबकि ज्वार की 12-15 किग्रा. बीज पर्याप्त होता है।
- संकर एवं संकुल मक्की 60 सेमी. की दूरी पर लाइनों में एंव देशी मक्का तथा ज्वार को 45 सेमी. की दूरी पर लाइनों में बोना चाहिए। पौधे से पौधे की दूरी 20 सेमी रखनी चाहिए। जल की उपलब्धता होने पर अरहर की बुवाई जून के प्रथम सप्ताह एवं वर्षा आधारित क्षेत्रों में वर्षा प्रारंभ होने पर ही करें। एक हेक्टेयर के लिये 12-15 किग्रा. बीज की पर्याप्त होता है। बीज को राइजोबियम कल्चर एवं थीरम 2.5 ग्रा./किग्रा. बीज से अवश्य उपचारित करें।

मूंगफली

- माह के प्रथम पखवाड़े में मूंगफली की बुवाई के लिये तैयारियां करें एवं द्वितीय पखवाड़े तक बुवाई करें। बुवाई के लिए बीज सावधानी पूर्वक छिलके से निकाले।

- फैलने वाली मूंगफली की प्रजातियों की 80–100 किग्रा. एवं गुच्छेदार प्रजातियों का 60–80 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है।

चरागाह, वन एवं उद्यान चरागाह

- वृक्षों की रोपाई वाले गड्ढ़ों में गोबर की सड़ी खाद अथवा कम्पोस्ट के साथ मिलाकर भर दें।

बहुवर्षीय घास

- बहुवर्षीय घासों के लिये खेत तैयार रखें। ताकि वर्षा आरंभ होने पर रोपाई की जा सके।
- घास के पौधशाला की देखभाल करें एवं समयानुसार सिंचाई करें।

फसल उत्पादन

धान, मक्का, ज्वार एवं अरहर

- धान, मक्का, ज्वार आदि फसलों में अच्छी सड़ी गोबर की खाद/कम्पोस्ट 10 टन/हे. की दर से बुवाई के 20–25 दिन पहले डालें। एवं मिट्टी में अच्छी प्रकार मिलाएं।
- मक्का एवं ज्वार में सिंचित दशा में कुल 10:40:40 किग्रा. नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश का प्रयोग करें। जबकि बारानी परिस्थितियों में 60:40:40 किग्रा. उक्त उर्वरकों की मात्रा डालें। नत्रजन की दो तिहाई मात्रा बुवाई के समय एवं शेष मात्रा 40–45 दिन बाद डालें।
- अरहर में बुवाई के समय 100 किग्रा. डी.ए.पी. प्रति हेक्टेयर डालें।
- फरवरी, मार्च में रोपी गई गिनी, नेपियर, सीटेरिया की कटाई करते रहें तथा कम अंतराल पर पानी और यथा आवश्यकता उर्वरक, गोबर की सड़ी खाद अथवा कम्पोस्ट डालते रहें।

बीज प्रसंस्करण एवं भंडारण

- जई में बीज प्रसंस्करण एवं भंडारण।
- बरसीम की पिछेती प्रजातियों में फसल कटाई, थ्रेसिंग, सफाई एवं बीजों का सुखाना तथा कीटनाशक से बीजों को संशोधित कर उनका भंडारण करना चाहिए।

बेर

- बेर के बीज पौध की कलिकायन कर अच्छी किस्म में बदलें। खरीफ सब्जियों के लिए खेत की तैयारी करें।
- गड्ढ़े में सड़ी गोबर की खाद एवं दीमकनाशी दवा मिलाकर भरें।
- नर्सरी में लगाए गए पौधों की देखभाल करें। वन विभाग में उपलब्ध पौधों को सुरक्षित करा लें।

छाया में रखे गए पशु

पशुपालन

- गर्मी से बचाव हेतु पशुओं को वृक्षों की छाया में रखें।
- पशुओं को गर्म पदार्थ एवं गर्मी जिनमें ढेंचा, सनई तथा अन्य तेलीय पदार्थ वाले पौधों के चारे न खिलाएं अन्यथा गर्भ गिरने का खतरा बना रहता है तथा अन्य पशुओं की उत्पादकता भी गिरती है।
- रबी की फसलों से बनाये गये फीडब्लाक (चारे के गट्ठर) फीडपैलेट (चारागोली) को यथा आवश्यकता खिलाते रहें।

जुलाई

धान

- जुलाई मास कृषि कार्यों के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है।
- इस माह धान की रोपाई पूर्ण कर लें। रोपाई के लिये 40 दिन पुरानी पौध का प्रयोग करें। मक्का, ज्वार, बाजरा, मूंगफली, उर्द, मूंग आदि की बुवाई क्षेत्र विशेष के लिये समर्थित क्रियाओं के अनुसार करें। बहुवर्षीय घासों की रोपाई 100×50 सेमी. की दूरी पर पंक्तियों में करें।

मक्का, ज्वार, बाजरा, मूंगफली, उर्द, एवं मूंग

- समय से बोयी गयी मक्का, ज्वार, बाजरा, उर्द, मूंग एवं मूंगफली में निराई गुड़ाई करें तथा थिनिंग करके पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेमी. करें।
- मूंगफली की फसल 35–40 दिनों की होने पर निराई–गुड़ाई करें एवं मिट्टी चढ़ायें। सोयाबीन की भी निराई–गुड़ाई करें।
- खरीफ चारा फसले जैसे–ज्वार, बाजरा, मक्का, ग्वार, लोबिया के लिए खेत की 2–3 जुताई करें। जुलाई के दूसरे एवं तीसरे सप्ताह में बीजों की बुवाई करें।
- बुवाई के समय बीजों का थीरम तथा बैविस्टिन (2.5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से) उपचार कर बोएं। बुवाई के तुरंत बाद एवं अंकुरण से पहले ज्वार, बाजरा एवं मक्का में एट्राजीन (1.5 किग्रा./हे. 600 लीटर पानी में) का छिड़काव करें।
- समय से बोयी गयी बाजरा, ज्वार एवं मक्का में थिनिंग के पश्चात् नत्रजन की शेष मात्रा डालें।

पौध की रोपाई करते किसान

बागवानी

कलमी पौधे

- गड्ढे की भराई करें। दो या तीन अच्छी वर्षा हो जाए तब गड्ढ़ो में कलमी पौध की रोपाई करें।
- अच्छी वर्षा होने पर बहुउद्देशीय पौध लगाएं। विगत वर्ष लगाए गए बागों में मरे पौध की जगह नई पौध लगाएं।
- आंवले के पुराने/बीज पौध में कलिकायन कर अच्छी किस्मों में बदलें। खरीफ सब्जियों की बुवाई करें।

दलहनी चारा

- अच्छी वर्षा होने पर घास की रोपाई 50×50 सेमी. पर करें। यदि बीच में दलहनी चारा लगाना हो तो 100×50 सेमी. की दूरी पर घास की रोपाई करें और बीच में दलहनी चारे की एक पंक्ति डालें।

चरागाह, वन एवं उद्यान चरागाह

- वर्षा शुरू होते ही वृक्षों की रोपाई वाले गड्ढ़ों में क्षेत्र की यथा आवश्यकता वृक्षों की रोपाई करें।
- फसलों की उत्तम पैदावार हेतु खेतों की मेंड़ों की मजबूत मेंडबंदी करें,
- शुष्क क्षेत्रों पर बाजरा, ग्वार के साथ खेजड़ी के वृक्षों की स्थापना करें।
- पानी की उपलब्धता को ध्यान में रखकर अन्न, चारा एवं नकदी फसलों के साथ स्थानीय आवश्यकता मिट्टी और जलवायु को ध्यान में रखकर वृक्षों की प्रजातियों की रोपाई करें।
- पोषक तत्वों की उपलब्धता, नमी के संरक्षण, खरपतवारों की रोकथाम, आदि हेतु वृक्षों की पत्तियों का विछावन आदि करें।
- फसलों की पंक्तियों में वृक्षों की पत्तियां, बिछावन आदि बिछाएं। यह क्रिया बुवाई से पूर्व उर्वरकों के मिश्रण के साथ भी की जा सकती है।
- खरपतवारों को नष्ट करते हुये झाड़ी आदि की खेत के एक कोने में सुपर फास्फोट एवं अमोनियम फास्फोट के मिश्रण से सुपर कम्पोस्ट बनाएं और उर्वरकों के साथ फसलों में प्रयोग करें।
- खेतों की खाली मेंड़ों पर वृक्षों एवं चारा घासों की रोपाई करें जिससे फसलों की पैदावार एवं पशुओं के लिए चारा प्राप्त होता रहे।

बहुवर्षीय घास

- बहुउवर्षीय घासों में रोपाई के समय 60:40 किग्रा. नत्रजन एवं फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से डालें।
- गिनी, नेपियर, सीटेरिया बहुवर्षीय चारा घासों की रोपाई करें और स्थापित घासों की कटाई 40 से 45 दिनों के अंतर पर करते रहें तथा कम अंतराल पर पानी और यथा आवश्यकता उर्वरक, गोबर की सड़ी खाद अथवा कम्पोस्ट डालते रहें।
- गिनी, नेपियर, सीटेरिया की रोपाई हेतु 20 सेमी. गहराई की नाली बनाएं और 50 सेमी. की दूरी पर दो से तीन घास की जड़ों की लगातार रोपाई करें।
- जून के शुरुआत में बोई गई चरी की कटाई करें।
- बहुवर्षीय चारों की कटाई करें एवं कटाई के पश्चात् 30 किग्रा. नत्रजन/हे. की दर से छिड़काव करें।

अगस्त

धान

- धान की शीध्र पकने वाली प्रजातियों की बुवाई पूर्ण करें। देर से पकने वाली प्रजातियों की बुवाई अब न करें।

बाजरा

- बाजरा की बुवाई यदि रह गयी हो तो शीध्र पूर्ण करें।

उर्द मूंग

- उर्द मूंग में यदि गुड़ाई न की गयी हो तो गुडाई कर दें।
- सोयाबीन में पहली निराई होने के 20-25 दिन बाद दूसरी निराई गुड़ाई करें।

मूंगफली

- मूंगफली में दूसरी निराई गुड़ाई बुवाई के 30-40 दिन बाद करके मिट्टी चढ़ाने का कार्य करें।

फसल उत्पादन

धान

- धान की रोपाई के 25-30 दिन बाद अधिक उपज वाली प्रजातियों में 25-30 किग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से डालें। मक्का में नरमंजरी निकलते समय 40 किग्रा. नत्रजन प्रति हे.की दर से छिड़काव करें।

ज्वार, बाजरा, मक्का अथवा लोबिया :

- समय से बोई गयी अधिक उत्पादन वाली बाजरा प्रजातियों में नाइट्रोजन की शेष मात्रा (30-40 किग्रा.) का छिड़काव करें।
- चारे के लिए बोई गयी ज्वार, बाजरा, मक्का अथवा लोबिया आदि की कटाई करें।
- ज्वार, बाजरा की 2 कटाई वाली प्रजातियों में 30-40 किग्रा. नत्रजन/हे. की दर से छिड़काव करें। छिड़काव के समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।
- चारा की सभी फसलों की गुड़ाई एवं निराई करें।

बागवानी

कलमी पौधे

- कलमी पौधों की रोपाई करें। विगत वर्ष लगाये गये बागों में मरे हुए पौधों की जगह दूसरे पौधे लगाएं।
- खरीफ सब्जियों की रोग/कीट से सुरक्षा करें तथा जल निकास की व्यवस्था करें।
- वन-पौधे/बहुउद्देशीय पौध की रोपाई करें।

चरागाह, वन एवं उद्यान चरागाह

- घास की रोपाई करें विगत वर्ष लगाए गए चरागाह में मरे हुए पौध की जगह नई घास के पौध की रोपाई करें।
- यदि पुराने चरागाह में चारा की अच्छी बढ़त हो गयी हो तो हरे चारे की एक कटान अगस्त के अंत में कर लें।
- खाद्यान्न एवं नकदी फसलों की खेती के साथ-साथ फसलों एवं वृक्षों की रोपाई करें जिससे पशुओं को चारा एवं लकड़ी तथा अपने लिये खाद्यान्न एवं नकद राशि प्राप्त होती है।
- भावी पीड़ियों के जीवन संरक्षण हेतु वर्षा के जल का सही एवं स्वस्थ संरक्षण आवश्यक है और इस कार्य हेतु भारत सरकार की जल संचयन योजनाओं का भरपूर लाभ उठाएं।
- वर्षाऋतु में यद्यपि वर्षा के जल की पर्याप्त उपलब्धता के कारण पशुओं को चारा प्राप्त होता रहता है फिर भी किसान खाद्यान्न एवं नकदी फसलों के साथ वृक्षों एवं चारा घासों की स्थापना द्वारा पूरे वर्ष पशुओं के लिये चारा प्राप्त कर सकते हैं।

चरागाह में चरते हुए पशुधन

बहुवर्षीय घास

- बहुवर्षीय घासों की रोपाई यदि जुलाई माह में पूर्ण न हो पाई हो तो शीघ्र पूर्ण करें। गिनी, नेपियर, सीटोरिया बहुवर्षीय स्थापित चारा घासों की कटाई 40 से 45 दिनों के अंतर पर करते रहें तथा कम अंतराल पर पानी और यथा आवश्यकता उर्वरक, गोबर की सड़ी खाद अथवा कम्पोस्ट डालते रहें। ❑

राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की एकता और उन्नति के लिए आवश्यक है।

—महात्मा गांधी

राष्ट्र के एकीकरण के लिए सर्वमान्य भाषा से अधिक बलशाली कोई तत्व नहीं है मेरे विचार में हिंदी ही ऐसी भाषा है।

—लोकमान्य तिलक

हिन्दी का आन्दोलन समूचे देश को आत्म-निर्भर और समृद्ध बनाने का संकल्प है।

—डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

हिंदी से किसी भाषा को भय नहीं है, यह सबकी सहोदर है।

—महादेवी वर्मा

हरे चारे के लिए संकर नेपियर घास उगायें

एस.एन. राम

संकर नेपियर घास

संकर नेपियर घास, नेपियर (पेनिसेटम परप्यूरियम) और बाजरा (पेनिसेटम टाइफ्वायड्स) के संकरण से विकसित की गयी है। इस घास से पौष्टिक और पाचक हरा चारा साल भर मिलता है। यह घास गन्ने की भांति लंबी होती है तथा अनुकूल परिस्थितियों में इसके एक पौधे से 30-40 कल्ले निकलते हैं। इस घास की ऊंचाई 2-3 मीटर और तने की मोटाई 1.5-2 सेंटीमीटर होती है। इसकी पत्तियां हरी और 60-80 सेंटीमीटर लंबी होती हैं। इसमें बीज नहीं बनते हैं। इसके चारे में शुष्क पदार्थ के आधार पर 7-8 प्रतिशत प्रोटीन, 34 प्रतिशत रेशा, 2.3 प्रतिशत ईथर निष्कर्ष, 45 प्रतिशत नत्रजन रहित निष्कर्ष एवं 16 प्रतिशत राख पायी जाती है। उपयुक्त अवस्था में कटाई करके इस घास को हे तथा साइलेज के रूप में सुरक्षित रखा जा सकता है। इस घास को संसार के सभी उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में उगाया जाता है। भारत में यह घास उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, बिहार, असम, कर्नाटक, महाराष्ट्र, केरल, राजस्थान, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, गुजरात, आंध्र प्रदेश, बंगाल आदि प्रदेशों के सिंचित क्षेत्रों में उगाई जाती है।

जलवायु एवं भूमि

इसकी अच्छी वृद्धि के लिए गर्म एवं नम जलवायु उपयुक्त होती है तथा औसत तापमान 24 से 28° सेल्सियस बढ़वार के लिए सबसे अनुकूल होता है। इसकी खेती लगभग 1000 मिली मीटर वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलता पूर्वक की जा सकती है। भूमि में स्थापित हो जाने पर यह अधिक गर्मी एवं सूखा भी सह लेती है।

यह घास विभिन्न प्रकार की भूमियों पर उगायी जा सकती है। इसके लिए दोमट या बलुई दोमट भूमि अच्छी होती है। दोमट भूमि, जिसमें जल-निकास का उचित प्रबंध हो इसके लिए सबसे उपयुक्त है। इस घास की जडें विस्तृत होने से मिट्टी के कण बंधे रहते हैं और भूमि का कटाव कम होता है। इसकी खेती के बाद जडों द्वारा जीवाशं पदार्थ प्राप्त होने से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है।

खेत की तैयारी

इसको लगाने के लिए खेत को अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए। एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा दो-तीन जुताइयां हैरो या देशी हल से करके पटेले द्वारा भूमि को समतल कर लेना चाहिए। इस घास को लगाने से पहले खेत में खरपतवार को निकाल देना चाहिए, अंतिम जुताई के समय गोबर या कम्पोस्ट की खाद खेत में फैलाकर मिट्टी में मिला देनी चाहिए। रोपाई से पहले खेत में सिंचाई की सुविधा अनुसार उपयुक्त आकार की क्यारियां बना लेते हैं। सिंचाई एवं जलनिकास के लिए नालियों की व्यवस्था भी खेत की तैयारी के समय कर लेनी चाहिए।

प्रजातियां

पूसा कृषि संस्थान से बाजरा और नेपियर के संकरण से पूसा जायन्ट किस्म निकाली गई है जो नेपियर घास से अधिक मुलायम और पत्तीदार होती है। इसमें सूखे की स्थिति को सहन करने की क्षमता अधिक होती है। संकर नेपियर की अन्य कई किस्में निकाली गयी हैं। पंजाब कृषि विश्वविद्यालय से विकसित की गयी एन. बी. 21, एन. बी. 22, एन. बी. 9, एन. बी.1, एन. बी. 5, आदि संकर किस्में हैं। एन. बी. 21 सबसे लोकप्रिय और अधिक उपज देने वाली किस्म है, जिसमें सर्दियों में भी पर्याप्त वृद्धि होती है। दक्षिणी प्रदेशों धारवाड़ से विकसित की गयी संकर किस्म ''शक्ति'' ई. बी. 4 तथा को-1 अधिक लोकप्रिय है। पूर्वी प्रदेशों के लिए बी. एन 2 उपयुक्त पायी गयी है। झांसी विकसित आई. जी. एफ. आर. आई. नं. 3 किस्म सीधी चढ़ने वाली, पत्तीदार एवं मुलायम है तथा यह अन्य फसलों के साथ उगाने के लिए सर्वोत्तम है। इसके अतिरिक्त आई. जी. एफ. आर. आई. नं. 7 और 10 अम्लीय मृदा एवं अर्धशुष्क जलवायु के लिए उपयुक्त है। इसके अलावा आई. जी. एफ. आर. आई. 6, पी.एन.बी. 83, यशवन्त, स्वेटिका 1, गजराज आदि इसकी महत्वपूर्ण किस्में हैं।

अंत: फसलें

उत्तर भारत में नेपियर घास की सर्दियों में विशेषकर नवंबर से फरवरी तक वृद्धि कम होती है। अत: भूमि के समुचित उपयोग के लिए इसकी कतारों के बीच में चारे की अंत: फसलें विशेषकर दलहनी चारे जैसे-बरसीम, रिजका, सेंजी, मटर इत्यादि उगाना चाहिए। इसी प्रकार गर्मियों में लोबिया, ग्वार इत्यादि फसलों को नेपियर घास के साथ उगाना चाहिए।

रोपाई

इस घास में बीज नहीं बनने से इसे जड़दार कल्लो एवं तने के टुकड़ों द्वारा लगाया जाता है।

इसके लिए प्रति हेक्टेयर 20000 टुकड़ों की आवश्यकता होती है। भार के अनुसार 10-15 कुन्तल टुकड़े एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त होते हैं। जड़ एवं तने के टुकड़ों की रोपाई तैयार खेत में पंक्तियों में की जाती है। कतार से कतार की दूरी 100 सेमी तथा पौधे से पौधे की दूरी 50 सेमी रखनी चाहिए। प्रत्येक टुकड़े में कम से कम 2 गांठ अवश्य होनी चाहिए, जिसकी एक गांठ जमीन के अंदर और दूसरी जमीन के ऊपर होनी चाहिए। इन टुकड़ों की रोपाई भूमि में 45° के कोण पर करते हैं। उत्तर भारत के सिंचित क्षेत्रों में संकर नेपियर की बुवाई का उचित समय मार्च माह तथा असिंचित क्षेत्रों में जून-जुलाई माह होता है। दक्षिण भारत में अधिक गर्मी के समय को छोड़ कर पूरे वर्ष रोपाई की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक

यह एक अधिक उपज देने वाली बहुवर्षीय घास है जिससे वर्ष में 5-6 कटाइयां प्राप्त होती हैं। अत: इसको पोषक तत्वों की आवश्यकता अधिक होती है। अधिक उपज लेने के लिए खेत की तैयारी के समय 10-15 टन गोबर अथवा कम्पोस्ट की खाद मिट्टी में मिला देनी चाहिए। इसके अलांवा रोपाई के समय 40 किलोग्राम नत्रजन, 40 किलोग्राम फास्फोरस और 30 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करते हैं। इसके बाद प्रत्येक कटाई के उपरांत 30 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने से पुनर्वृद्धि शीध्र और अच्छी होती है। खाद एवं उर्वरक की इसी मात्रा को बाद के वर्षों में भी वर्षा आरंभ होने पर देना चाहिए।

सिंचाई एवं जल निकास

गर्मी एवं सर्दी में इस घास को सिंचाई की आवश्यकता होती है। फरवरी-मार्च माह में लगाने पर रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई कर देनी चाहिए। इसके बाद जब तक पौधे भंलि-भांति स्थापित न हो जाए तब तक 6-7 दिन के अंतर पर सिंचाई करनी चाहिए। प्राय: ऐसी दो-तीन सिचाइयों की आवश्यकता होती हैं। गर्मियों में मार्च से जून तक 12-15 दिन के और सर्दियों में 15-20 दिन के अंतर पर सिंचाई करनी चाहिए। वर्षा के मौसम में सामान्यत: सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है परंतु यदि तीन सप्ताह तक वर्षा न हो तो सिंचाई का उचित प्रबंध करना चाहिए प्रत्येक कटाई के पश्चात सिंचाई करने से पौधों की पुनर्वृद्धि अच्छी होने से उपज अधिक होती है। वर्षा ऋतु में जल-निकास का भी समुचित प्रबंध करना चाहिए। खेत के निचले भागों में लंबे समय तक पानी भरे रहने से पौधों की वृद्धि रूक जाती है और पौधे मरने लगते है।

निराई-गुड़ाई

इस घास को लागाने के बाद दो ढाई-माह तक खरपतावार अधिक उगते है। इन खरपतवारों को घास की कतारों के बीच में गुड़ाई करके नियंत्रण करना चाहिए। जब यह घास अच्छी तरह स्थापित हो जाती है तो खरपतवार स्वत: ही दब जाते हैं। वर्षा ऋतु में कतारों के बीच गुड़ाई करने से भूमि की भौतिक, जैविक एवं रासायनिक क्रियाओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

कटाई प्रबंध एवं उपज

इस घास से अधिक पैदावार एवं पौष्टिक चारा प्राप्त करने के लिए कटाई का उचित प्रबंध करना चाहिए। इसके लिए इस घास की पहली कटाई रोपाई के लगभग ढाई माह बाद करनी चाहिए तथा बाद की कटाइयां गर्मी में लगभग 40 से 50 दिन एवं बरसात में 30-35 दिन पर करनी चाहिए। इस घास की कटाई भूमि से लगभग 15-20 सेमी की ऊंचाई से करने से पुनर्वृद्धि शीघ्र होती है। इससे प्रति वर्ष लगभग 5-6 कटाइयां ली जा सकती है। इस घास को एक बार लगाने से 4-5 वर्ष तक अच्छा चारा मिलता है इसके पश्चात उत्पादन कम होने लगे तो इसे दुबारा लगाना चाहिए। नवंबर से फरवरी तक इस घास के शुषुप्तावस्था में होने से हरा चारा प्राप्त नहीं होता हैं। अत: शीतऋतु में कतारों के बीच में बरसीम या रिजका की बुवाई करके हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। संकर नेपियर घास से प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष हरे चारे की उपज लगभग 120-150 टन प्राप्त होती है। ❑

हिंदी देश की सबसे बड़े हिस्से में बोली जाने वाली भाषा है। हमें इस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

राष्ट्रभाषा हिंदी द्वारा ही भारतीय संस्कृति की रक्षा हो सकती है।

—राजर्षि टण्डन

लवणीय मृदायें-उपचार के बाद भरपूर उपज

शेषमणि मिश्र

देश में लवणों की अधिकता से ग्रस्त मृदाओं का क्षेत्रफल लगभग 100 लाख हेक्टेयर है। इनमें सुधार के बाद अच्छी पैदावार ली जा सकती है। उत्तर प्रदेश में इनका क्षेत्रफल 24 लाख हेक्टेयर है। किसी एक राज्य में पायी जाने वाली लवणों से समस्या ग्रस्त मृदाओं में उत्तर प्रदेश सबसे आगे है। नमक की अधिकता से प्रभावित मृदाओं को दो समूहों में बांटा गया है। जिसमें पहली लवणीय तथा दूसरी क्षारीय मृदा। मृदा में पाये जाने वाले नमक कई प्रकार के समूहों में पाये जाते हैं तथा किस प्रकार के लवण उपस्थित हैं इसी आधार पर ही उन्हें लवणीय या क्षारीय मृदा कहा जाता है। उत्तर प्रदेश में लवणीय मृदाओं का क्षेत्रफल क्षारीय मृदाओं की तुलना में काफी कम है। ये मृदायें उत्तर प्रदेश के मथुरा, आगरा जिले के पश्चिमी भाग तथा नदियों से निकलने वाले जल स्त्रोतों के किनारे पायी जाती हैं।

दो प्रकार के लवण

समस्या ग्रस्त मृदाओं में पाये जाने वाले लवण मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं। एक तो कैल्शियम तथा मैगनिशियम के क्लोराइड तथा सल्फेट (कैल्शियम क्लोराइड, कैल्शियम सल्फेट, मैग्नीशियम क्लोराइड, मैग्नीशियम सल्फेट) जो पानी में पूर्णरूपेण घुल जाते हैं अत: इनको पानी के साथ बहाकर समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। यह लवणीय मृदायें कहलाती है। इस प्रकार के घुलनशील लवण जिन मृदाओं में उपस्थित होते है उनमें जल निकास की कोई समस्या नहीं होती। अत: लवणीय मृदाओं में समस्या ज्यादा जटिल नहीं होती हैं। दूसरे समूह के लवण जो कि सोडियम के कार्बोनेट तथा सोडियम बाईकार्बोनेट होते है, क्षारीय मृदाओं से पाये जाते हैं। यह पानी में बहुत कम मात्रा में घुलते हैं और जो घुलते भी है, वे पानी की पारगम्यता बहुत कम होने से खेत के बाहर नहीं निकल पाते। यह समस्या अपेक्षतया अधिक जटिल होती है, और इसका इलाज भी महंगा होता है। इस समस्या को दूर करने के लिए पहले मृदा की पारगम्यता बढ़ाने के लिए जिप्सम का प्रयोग करना पड़ता है। कंकड़ीली मिट्टियों में जिप्सम के स्थान पर पाइराइट का भी प्रयोग किया जा सकता है। जिप्सम का प्रभाव पाइराइट की तुलना में तेजगति से होता है, परंतु यह अपेक्षतया मंहगा है। परंतु इस लेख में इन मृदाओं के विषय में आगे चर्चा नहीं की जायेगी। चर्चा का विषय केवल लवणीय मृदायें ही रहेगी।

लवणीय मृदा

आज से लगभग 35-40 वर्ष पहले गांवों में जिस रेह का प्रयोग कपड़े घुलने के लिए किया जाता था, वह लवणीय मृदाओं से ही प्राप्त होती थी। इस रेह में कपड़े को साफ करने की क्षमता कहां से आ जाती थी? जो कारण इसे खेती के अनुपयुक्त बनाते थे, वही कारण कपड़ों में निखार भी लाते थे। इन लवणीय मृदाओं के ऊपरी सतह पर एक मोटी परत लवणयुक्त घूल की जमी रहती थी। इसकी मोटाई कभी-कभी एक फीट तक भी हो सकती थी। गर्मियों में तेज आंधी चलने पर यह धूल हवा में उड़कर आंखों में घुसने के साथ शरीर से भी चिपट जाती है। इन मृदाओं में कैल्शियम तथा मैग्नीशियम के क्लोराइट तथा सल्फेट अधिक मात्रा में पाये जाते है। चूंकि ये नमक पानी में आसानी से घुलनशील होते हैं, अत: इन मिट्टियों में जल निकासी की अच्छी व्यवस्था करके इनमें अच्छी फसल ली जा सकती है। समस्या उतनी जटिल नहीं है जितनी कि क्षारीय मृदाओं में है। अधिक नमक (0.1 प्रतिशत से ज्यादा) होने से इन मृदाओं में निम्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है :

- पौधों की जमीन से पानी तथा पोषक तत्व जैसे नत्रजन, फास्फोरस, जस्ता आदि अवशोषित करने की क्षमता में कमी आ जाती है।
- उपयुक्त वातावरण न होने से बीजों का जमाव कम तथा देर से होता है।
- पौधों की बढ़वार की गति धीमी पड़ जाती है।
- लवणों की अधिकता से पौधे सूखे तथा मुरझाए दिखायी पड़ते हैं।
- पोषक तत्वों जैसे नत्रजन, फास्फोरस जस्ता आदि की उपलब्धता में भी कमी आ जाती है।

लवणीय मृदाओं में नमक के प्रकार :

लवणीय मृदाओं में मुख्यत: दो प्रकार के लवण- सल्फेट तथा क्लोराइड पाये जाते हैं।

सल्फेट

कैल्शियम, मैग्नीशियम और सोडियम को सल्फ्यूरिक अम्ल से क्रिया होने पर बनते है। ये लवणीय मृदाओं में अधिकता से पाये जाते हैं। रेगिस्तानी मिट्टियों में तथा नदियों के किनारे ये प्रचुर मात्रा में पाये जाते है।

(क) कैल्शियम सल्फेट

यह जिप्सम के नाम से भी जाना जाता है। इसकी घुलनशील थोड़ी कम होती है। यह अधिकतम एक लीटर जल में 2.0 ग्राम ही घुलता है। रेगिस्तान में यह बहुतायत से पाया जाता है। राजस्थान में इसके बड़े-बड़े ढूहे पाये जाते हैं।

(ख) मैग्नीशियम सल्फेट

यह जल में बहुत अधिक घुलनशील होता है। एक लीटर जल में 260 ग्राम तक घुल जाता है। इसीलिये यह लवणीय मृदाओं को निचली सतहों पर उपस्थित जल में भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। तमाम लवणीय मृदाओं में यह अधिकता से पाया जाता है।

(ग) सोडियम सल्फेट

लवणीय मृदाओं में पाया जाने वाला यह मुख्य लवण है। यह मैग्नीशियम सल्फेट से भी पौधों को अधिक नुकसान करता है। यह एक लीटर में 170 ग्राम तक घुल जाता है। इसकी घुलनशीलता तापमान पर अधिक निर्भर करती है। इसीलिए गर्मी में इसकी उपलब्धता ठंढ की अपेक्षा दुगुनी हो सकती है। इसलिये लवणीय मूदाओं को गर्मी में ही उपचारित करना चाहिए।

क्लोराइड

(क) कैल्शियम क्लोराइड

यह अत्यंत घुलनशील हैं तथा वातावरण की नमी सोखकर भी घुल जाता है। यह जहां पर अधिक लवण की मात्रा हो वहीं पाया जाता है। यह 400-500 ग्राम/ली. घुलनशील हैं। लवणों की अधिकता से इनके घोल में विद्युत चालकता काफी बढ़ी रहती है।

(ख) मैग्नीशियम क्लोराइड

यह लवण भी 350 ग्राम/ली. तक घुल जाता है। यह भी कैल्शियम क्लोराइड की तरह वातावरण से नमी को सोख लेता है तथा पौधों के लिये अत्यधिक हानिकारक है।

(ग) सोडियम क्लोराइड

सोडियम क्लोराइड खाने वाला नमक ही है। यह लवणीय मृदाओं में पाया जाने वाला मुख्य नमक है। यह पानी में अत्यधिक घुलनशील है (260 ग्रा./ली.) और इसकी घुलनशीलता तापमान से ज्यादा प्रभावित नहीं होती। इसकी उपस्थिति से पौधों को बढ़ाकर सही ढंग से नहीं हो पाती।

लवणीय मृदाओं को सुधार

लवणीय मृदा के सुधार की किसी भी विधि का मूल सिद्धांत है विलेय लवणों को पौधों की जड़ों की पहुंच से बाहर कर देना ताकि उनका विनाशकारी प्रभाव जड़ों पर न पड़े। इन मृदाओं को सुधारने के लिए यूं तो अनेक विधियां बताई गयी हैं, परंतु जल निकासी की समुचित तथा टिकाऊ व्यवस्था करके इस समस्या से हमेशा के लिये छुटकारा पाया जा सकता है। निम्न विधियां अपनी सामर्थ्य तथा सुविधा के अनुसार प्रयोग में लायी जा सकती हैं :

(क) मृदा की सतह से खुरचकर लवणों को हटा दें

अधिकांश पौधों की जड़े मृदा की सतह से 15 से.मी. नीचे तक ही जाती हैं। इस विधि का लक्ष्य होता है, कि सतह से 15 से.मी. तक के लवण तथा मिट्टी खुरचकर निकाल दें और खेत से कहीं अन्यत्र फेंक दें। यदि उस क्षेत्र में पानी की सतह काफी ऊपर है तो यह प्रक्रिया बार-बार दुहरानी पड़ेगी क्योंकि पानी के मिट्टी की कोशिकाओं द्वारा ऊपर आने पर लवण भी पुन: ऊपर आ जाते हैं।

(ख) निक्षालन

लवणों को विलेय करके पादप-जड़ क्षेत्र से बाहर कर देना ही इस विधि का अभिप्राय है। इसमें खेत को छोटे-छोटे भागों में मेड़बंदी करके पानी भर दिया जाता है। ग्रीष्म ऋतु इस कार्य के लिये अति उत्तम होती है। ध्यान रहे यह विधि भी उन्हीं क्षेत्रों में सफल है जहां जल स्तर जमीन से काफी नीचा हो, ताकि लवणों के ऊपर आने की कम संभावना रहे। नहरों के किनारे या फिर नदियों के बेसिन में यह विधि कम सफल रहेगी।

(ग) खाई खोदकर

इस विधि में थोड़ी-थोड़ी दूर पर गहरी खाइयां खोदी जाती है। सबसे पहले खेत के किसी एक किनारे पर खाई खोदकर उसकी मिट्टी को खेत से बाहर फेंक दिया जाता है। अब कुछ दूर पर जो दूसरी खाई खोदी जायेगी उसकी मिट्टी को इस पहली खाई में इस प्रकार भर दिया जाता है कि सतह की मिट्टी नीचे चली जाय और नीचे की मिट्टी को ऊपर भरें। इस प्रक्रिया को खाई दर खाई दुहराते जाएं।

(घ) विलेय लवणों को सतह से बहाना

विलेय लवण पानी के बहाव के साथ बहकर खेत से बाहर चलें जाएंगे। परंतु इस विधि में चूंकि पानी में लवण घुले होते है, अत: इस पानी को किसी के खेत में नहीं बल्कि किसी ऐसी जगह बहाना चाहिए जहां पर फसल न लेनी हो। यदि मिट्टी बहुई है तो कुछ लवण जमीन की निचली परतों में भी जा सकते है। ज्यादा बलुई मृदाओं में निक्षालन विधि ज्यादा सफल रहेगी। ❑

देश के सबसे बड़े भू-भाग में बोली जाने वाली हिंदी ही राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी है।

—नेताजी सुभाष चन्द्र बोस

पूर्वोत्तर भारत में चारा उत्पादन की नई दिशाएं

आर.बी. भास्कर एवं प्रदीप कुमार त्यागी

पूर्वोत्तर भारत की सिंचित खेती में पशुधन का बहुत महत्व है। यहां पर पशुधन से दूध, मांस खाद एवं चल शक्ति छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए वरदान है। लेकिन इस क्षेत्र में पशुधन उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से कम ही है क्योंकि यहां का पशुधन छुट्टा चराई या धान के पुआल पर ही निर्भर रहते हैं। अत: उनकी स्वास्थ एवं उत्पादकता कम होना स्वाभाविक हैं। इसी वजह से पशुधन व्यवसाय इस क्षेत्र में अधिक प्रभावी नहीं हो सका। जिसकी मुख्य वजह अच्छी प्रजाति के पशुधन का न होना, बढ़ती आबादी के कारण सघन चारा उत्पादन की जगह खाद्य फसलों का उत्पादन तथा इस क्षेत्र में डेरी के प्रति कम झुकाव है। हलांकि इस क्षेत्र में कुछ जगहों पर कम रोमन्थियों का स्तर अच्छा है। वैश्वीकरण तथा बढ़ती आबादी एवं बदलती भोज्य परिस्थितियों के कारण इस बदलते परिवेश में पशुधन के विभिन्न उत्पादन जैसे - मांस तथा दूध की आवश्यकता बढ़ी है। बहुआयामी फसलों एवं कृषि उत्पाद को उपभोक्ता तक पहुंचाकर खाद्य एवं पोषक सुरक्षा के क्षेत्रीय असंतुलन को ठीक किया जा सकता है। पशुधन आधारित कृषि ग्रामीणों को सिर्फ पोषण ही प्रदान नहीं करता बल्कि विषम परिस्थितियों जैसे सूखा, बाढ़ कम उत्पादन होने पर भी आर्थिक स्थिति को बनाये रखता है।

रोमन्थियों में चारा आधारित खाद्य पद्धति से उच्च उत्पादन एवं आर्थिकी क्षमता बढ़ी है। पूर्वोत्तर क्षेत्रों में वाणिज्यिक पशुधन आधारित फार्म पर अर्ध जैवीय खेती द्वारा सघन चारा उत्पादन द्वारा डेयरी मजबूत हुई है एवं सुअर पालन, मुर्गीपालन तथा खरगोश पालन के लिए आवश्यक सान्द्रण एवं चारा फसल भी प्राप्त हुआ। इस क्षेत्र में बहुत सी उगायी जाने वाली फसलें, घासें, तथा दलहनीय फसलों ने अच्छा प्रभाव दिखाया। पशुधन विकास के लिए चारे के साथ चावल उत्पादन ने इस क्षेत्र में विकास के लिए कई अन्य मार्ग खोले। चावल के एकल या द्वितीय उत्पादन से जीवन निर्वाह के अतिरिक्त शायद ही किसानों की सामाजिक-आर्थिक स्तर में सुधार हुआ हो। जैव उपयुक्त तथा आर्थिक रूप से चारा उत्पादन आधारित फसल पद्धति से उत्पादकता एवं कृषि क्षमता बढ़ी है। मिश्रित खेती में पशुधन समाहित करने से कृषकों में प्राकृतिक विपदा के प्रति स्थिरता तथा उनकी आर्थिकी में भी सुधार हुआ है। इस क्षेत्र में चारों के मध्य तालमेल हेतु वर्तमान पद्धति में अनुकूल चारे प्राप्त करने के लिए प्रयास किये गये। विभिन्न स्तरों पर अनुसंधान करने से पता चला कि चारा फसलें उगाने से आर्थिकी मजबूत हुई है। संघन प्रबंधन द्वारा चारा आधारित अनुक्रम पूर्वोत्तर क्षेत्रों में खाद्य दानों की अपेक्षा लाभकारी रहा है।

चारा उत्पादन परिदृश्य

- बढ़ती आबादी एवं सीमित कृषि क्षेत्र होने के कारण चारा फसलों की अपेक्षा खाद्य फसलों को बढ़ावा।
- कुल उत्पादित क्षेत्र का एक प्रतिशत क्षेत्र में चारा फसलें उगाई जाती है।
- सीमित क्षेत्र होने के कारण चारा उत्पादन के लिए किसानों का अनिच्छुक होना।
- कुछ क्षेत्रों में हरित क्रांति के बाद, वन एवं चराई क्षेत्रों मे अनाज फसलों के उगाने के कारण पशुधन हेतु चरागाह क्षेत्र में कमी आयी है।
- अधिकतर किसानों के पास अच्छी नस्ल के पशुधन न होने के कारण उत्पादन कम होता है।
- चावल की कटाई के पश्चात् निचले क्षेत्रों वाली मिट्टी में नमी की अधिकता के कारण जुताई न होने की वजह से शरद ऋतु में फसल नहीं हो पाती है। सिंचाई की उचित व्यवस्था न होने से कुछ क्षेत्रों में रबी में सघन चारा उत्पादन में कठिनाई आती है।
- छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए डेयरी एक सफल उद्यम नहीं है।
- चराई की बाहुलता/पशुचारक आधारित पशुपालन मुख्यत: पूर्वोत्तर क्षेत्र में आर्थिक दृष्टि से उचित नहीं है।
- पूर्वोत्तर क्षेत्रों में अधिक वर्षा के कारण बाढ़ आ जाने से पशुपालन प्रभावित होता है।

चारा संसाधन

पूर्वोत्तर एवं उत्तर पूर्व क्षेत्रों में पशुधन मुख्यत: फसल अवशेष, चरागाह एवं गोचर आदि चारा संसाधनों पर आधारित होते है। इस क्षेत्र में हरे एवं सूखे चारे की भारी कमी हे। बढ़ती आबादी के कारण उत्पादित क्षेत्र में कमी एवं चारा उत्पादन क्षेत्र को बढ़ाने के लिए छोड़ी गयी भूमि के कारण समस्या बढ़ती जा रही है। पूर्वोत्तर क्षेत्रों में सूखे चारे की कमी 200-400 प्रतिशत तक आंकी गयी है। मेघालय में सबसे ज्यादा चारे में कमी देखी गयी है। हालांकि मिजोरम में सूखा चारा प्रचुर मात्रा में है। अगले दो दशकों में उच्च पशुधन की मात्रा बढ़ने से भविष्य में 15-20 प्रतिशत की बढ़ोतरी संभव है।

चारा संसाधनों पर पशुधन का दबाव

पूर्वोत्तर एवं उत्तर पूर्वोत्तर क्षेत्रों में खाद्य एवं चारा संसाधनों में मुख्यत: फसल अवशेष (चावल भूसी) चरा गाहों तथा अन्य चराई क्षेत्रों के चराई संसाधन जैसे-वन, बहुउद्देशीय पेड़ों की फसल तथा खुले छोड़े गये खेत आदि हैं। पूर्व तथा उत्तर पूर्व क्षेत्रों के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 25 प्रतिशत भाग चराई के लिए उपलब्ध है। हालांकि

सारणी-1 पूर्वोत्तर एवं उत्तर पूर्वोत्तर क्षेत्रों में चारा संसाधन

राज्य	चारे के शुष्क पदार्थ की उपलब्धता रु (मी.टन)	चारे के शुष्क पदार्थ की आवश्यकता रु. (मी.टन)	कमी (मी.टन)	कमी (प्रतिशत)
अरुणाचंल प्रदेश	0.52	0.91	0.39	75.0
असम	5.75	18.32	12.57	218.6
बिहार	15.61	40.94	25.33	162.3
झारखंड	3.84	19.70	15.86	413.0
मणिपुर	0.54	0.95	0.41	75.9
मेघालय	0.34	1.61	1.27	373.5
मिजोरम	0.21	0.11	+ 0.10	+ 47.6
नागालैंड	0.90	1.22	0.32	35.6
उड़ीसा	5.27	30.35	25.08	475.9
सिक्किम	0.27	0.62	0.35	129.6
उत्तर प्रदेश (पूर्वोत्तर)	25.8	40.72	14.92	57.8
पश्चिम बंगाल	21.7	42.25	20.55	94.7

आई.सी.ए.आर की डाटा बुक 2006
ए. आई.सी.आर.पी. (एफ.सी.) के केंद्रों एवं अन्य स्त्रोत के आंकड़ों के आधार पर।

उत्तर पूर्व क्षेत्र में कुल चराई क्षेत्र का 40 प्रतिशत क्षेत्र उपलब्ध है। इस क्षेत्र में पश्चिम बंगाल ही राष्ट्रीय औसत (1.47) से कहीं अधिक पशुधन संख्या घनत्व (4.69) रखता है। जबकि दूसरे नंबर पर उड़ीसा (1.50) आता है। सभी पूर्वोत्तर राज्यों में असम को छोड़कर (1.76) उनके भौगोलिक क्षेत्रों की अपेक्षा कम पशुधन दबाव है। उत्तर पूर्व क्षेत्र में चराई का दबाव बहुत ही कम 1.32 ए.सी.यू./हे. है। लेकिन पूर्वोत्तर राज्यों जैसे पश्चिम बंगाल (33.49 ए.सी.यू.हे.), झारखंड (6.80 ए.सी.यू./हे.) तथा उड़ीसा (5.12 ए.सी.यू./हे.)में राष्ट्रीय औसत (2.83 ए.सी.यू./हे.) की तुलना में अधिक दबाव है। उत्पादित क्षेत्र से पशुधन के लिए चारे के दबाव उत्तर पूर्व राज्यों में ज्यादा है। ए.सी.यू./हे. बोये जाने वाले क्षेत्रों में कहीं ज्यादा हैं। (2.91)। जिससे पता चलता है कि पशुधन मुख्यत: फसल अवशेषों तथा चराई पर निर्भर करता है। **(सारणी-2)।** यह परिदृश्य लाभवाली डेयरी के खराब भविष्य का कारक है। क्योंकि अच्छी नस्ल से अच्छी आर्थिकी नहीं हो पाती।

सारणी-2 चारा संसाधन पर पशुधन का दबाव

राज्य	भौगोलिक क्षेत्र (एम.हे.)	कुल चराई क्षेत्र (एम.हे.)	पशुधन (एम)	पशुधन घनत्व	चराई का दाब (ए.सी.यू./हे.)	ए.सी.यू./हे. शुद्ध बुवाई क्षेत्र
अरुणाचंल प्रदेश	8.37	2.19	1.26	0.15	0.18	3.14
असम	7.84	2.53	13.83	1.76	3.90	3.38
बिहार	9.41	2.00	27.16	2.88	9.15	4.22
झारखंड	7.97	1.42	15.83	1.99	6.80	3.21
मणिपुर	2.23	1.36	0.97	0.43	0.35	3.43
मेघालय	2.24	1.35	1.55	0.69	0.62	4.20
मिजोरम	2.11	0.44	0.28	0.13	0.09	1.57
नागालैंड	1.66	1.00	1.35	0.81	0.51	2.68
उड़ीसा	15.57	3.14	23.39	1.50	5.12	2.53
सिक्किम	0.71	0.46	0.34	0.32	0.39	1.80
त्रिपुरा	1.05	0.19	1.46	1.39	4.47	3.04
उत्तरप्रदेश	29.44	4.26	58.53	1.99	8.95	2.08
पश्चिम बंगाल	8.88	0.69	41.62	4.69	33.49	4.13

स्त्रोत : 1. पशुपालन तथा डेयरी विभाग, कृषि मंत्रालय,भारत सरकार, नई दिल्ली (2003)
2. भारतीय बंजर भूमि एटलस, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भूमि संसाधन विभाग भारतीय पर्यावरण नई दिल्ली (2000)

प्रमुख फसल पद्धति एवं उनकी उत्पादिता

पूर्वोत्तर तथा उत्तर पूर्वोत्तर क्षेत्रों में चावल आधारित अनुक्रम एकल फसल के रूप में प्रमुख है। मुख्यत: मध्य भूमि तथा निचले क्षेत्रों में। हालांकि उत्तर पूर्वोत्तर में द्विफसल चुनाव तथा पूर्वोत्तर में गेहूं। दलहनीय अनुक्रम प्रमुख रूप से अपनाये जाते हैं। बहुत सी फसल परिस्थितियों में इस तरह की प्रचलित फसल पद्धति कम फायदे की है तथा इस पद्धति के अनूकूल भी नहीं है। पश्चिम बंगाल (सारणी-3) को छोड़कर सामान्य पद्धति द्वारा औसत उत्पादकता पूर्वोत्तर तथा उत्तर पूर्वोत्तर क्षेत्रों में बहुत कम है। उत्पादकता एवं आमदनी के हिसाब से वर्तमान में अनवरत अनाज आधारित फसल को कमतर आंका गया है। यह पद्धति मृदा की खराब उत्पादकता/ उर्वरता तथा मृदा स्वास्थ्य के क्षरण के लिए उत्तरदायी माना गयी है। इस स्थिति से यह मांग उठने लगी है कि उचित लाभदायक फसलों या फसल अनुक्रम को पशुधन आधारित कृषि पद्धति को अपनाना चाहिए जो स्थिरता देता है सामाजिक सुग्रहयता तथा आर्थिक रूप से जीवन्त होती है।

चारा आधारित फसल अनुक्रम की सम्भाव्यता

भविष्य में बदलते खाद्य परिवेश के कारण पशु उत्पादन की मांग बढ़ेगी। यह चारा खाद्य पर आधारित लाभप्रद पशुधन उत्पादन पद्धति अपनाकर पूर्ण की जा सकेगी। चारा फसलों की उच्च स्तर वृद्धि तथा उत्पादन ज्यादा वर्षा तथा सूखे के समय तालाबों से सिंचाई की सम्भावना को देखते हुए प्राप्त की जा सकती है।

चारे में चावल या चावल आधारित पद्धति की एकल फसल विविधता द्वारा मृदा की अम्लता में सुधार तथा कृषि उत्पादन पद्धति में स्थिरता आयेगी

चार आधारित सस्य अनुक्रम की क्षमता :

चारा फसलें अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत पूर्वोत्तर एवं उत्तर पूर्वोत्तर क्षेत्रों में वर्ष 2000-2005 में चारा आधारित सस्य अनुक्रम का अध्ययन किया गया।

प्रायोगिक स्थलों में ऊपरी ब्रह्मपुत्र घाटी में जोरहट (असम), नये जलोढ़ क्षेत्र में कल्याणी (स्थल-बीरबुहम-पश्चिम बंगाल), पूर्व तथा दक्षिण पूर्व तटीय क्षेत्र में भुवनेश्वर (उड़ीसा), उत्तर पूर्व क्षेत्र में फैजाबाद (उत्तर प्रदेश) है। सघन प्रबंधन पद्धति द्वारा क्षेत्र के सबसे ज्यादा अपनाये जाने वाले सस्य अनुक्रम को चारा आधारित पांच सस्य अनुक्रम का अध्ययन किया गया। तीनों मौसमों में सस्य अनुक्रम को ऐसे सुनियोजित किया गया कि प्रत्येक स्थिति में एक चारा फसल हो। पांच वर्ष के आंकड़ों के आधार पर पता चला कि चारा फसल के प्रयोग से कुल उत्पादकता तथा आमदनी बढ़ी है।

उत्तर-पूर्वोत्तर क्षेत्रों में असम पूर्वोत्तर क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है तथा कृषि क्षेत्रफल भी ज्यादा है। मुख्यत एक समान स्थलाकृति है। लेकिन अन्य उत्तर पूर्वोत्तर क्षेत्रों में पहाड़ी क्षेत्र बहुत अधिक है। लेकिन कृषि का प्रारूप इन सभी क्षेत्रों में एक समान ही है। संसाधनों तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर परिवार की आवश्यकता के अनुसार चावल उत्पादन एकल एवं द्वितीय सस्य तथा रबी में दलहनीय जैसे-हरा चना तथा अन्य दलहनीय लिये जाते है। अम्लीय तथा कम उपजाऊ मिट्टी में चारा आधारित अनुक्रम का निष्पादन असम (जोरहट) के अर्द्धशुष्क आर्द्र मौसम में करने पर ज्यादा लाभकारी रहा। शुद्ध लाभ में बहुवर्षीय एन बी हाब्रिड ने सबसे ज्यादा अपनाये जाने वाले अनुक्रम सिसेम-रेपसीड-हरा चना की अपेक्षा 120 प्रतिशत की उच्चता दिखायी। अन्य चारों या सस्य अनुक्रम की अपेक्षा सन बी हाब्रिड ने कही ज्यादा लाभ एवं चारा दिया।

सारणी-3 सर्वाधिक अपनायी जाने वाली फसल अनुक्रम की औसत उत्पादकता

राज्य	फसल अनुक्रम	शुद्ध औसत (रु./हे./वर्ष)
असम	चवाल-चावल	170000-22000
	हरा चना/सीसेम-रेपसीड़/सरसों	15000-20000
झारखंड	चावल-छुट्टा	2000-2500
	चावल-गेहूं	6000-7000
पूर्वोत्तर राज्य	चावल-चावल	10000-15000
	चावल-छुट्टा	5000-8000
उड़ीसा	चावल-हराचना-काला चना	8000-10000
	चावल-सरसों-मूंगफली	8000-11000
	चावल-चावल	7000-10000
उत्तर प्रदेश (पूर्वोत्तर)	चावल-गेहूं	9000-11000
	चावल-गेहूं-मूंग	14000-16000
	चावल-गेहूं-गन्ना (2 वर्ष)	18000-20000
पश्चिम बंगाल	चावल-सरसों-मूंगफली	35000-40000
	चावल-जई-सिसेम	25000-30000
	चावल-आलू-जूट	40000-45000
	चावल-गेहूं-जूट	25000-30000

हिंदी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती है और दृढ़ करती है।

—राजर्षि टण्डन

चारे के सफल उत्पादन हेतु स्वस्थ बीज का महत्व

दिवाकर बहुखंडी एवं भगवत दयाल

कृषि विकास से संबंधित सभी वैज्ञानिक, कृषक एवं प्रशासक इस मत पर निर्विवाद रूप से समहत है कि श्रेष्ठ एवं उन्नत किस्में और कृषि की नवीनतम तकनीक से ही सफल कृषि संभव है, चाहे वे कृषि फसलें जैसे अनाज, दालें, तिलहन, सब्जियां, फल हो अथवा चारे से संबंधित जैसे जई, चरी, बरसीम व घास आदि फसलें हो या वन विज्ञान से संबंधित अन्य कोई भी मानव उपयोगी पेड़ पौधे हो। विकासशील युग में आज का कृषक बीजों की किस्म व उनके गुणों के प्रति पहले की अपेक्षा अधिक सजग है जिसके फलस्वरूप भारतवर्ष में विदेशों की भांति बीज उद्योगों की स्थापना हो गई है। बीज अधिनियम के अंतर्गत ऐच्छिक प्रमाण पत्र, शुद्धता और अंकुरण की न्यूनतम सीमा से अधिक अंकुरण क्षमता घोषित करना अनिवार्य है। विभिन्न फसलों के लिए बीजों में 60-80 प्रतिशत अंकुरण क्षमता घोषित करना अनिवार्य है। अर्थात 20-40 प्रतिशत बीज मृत हो सकते हैं या असाधारण पौधे उत्पन्न करेंगे। बीज रोग विज्ञान के अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो गया है कि मृत बीज एवं असाधारण पौध के लिए फफूंद, जीवाणु, विषाणु व सूत्रकृमि प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं।

रोग फैलाने में संक्रमित बीज की भूमिका

सामान्य रूप से संक्रमित व स्वस्थ बीज साथ-साथ रखे जाते हैं क्योंकि जब तक बारीकी से न देखा जाए, इनमें भेद नजर नहीं आता, इनसे उत्पन्न होने वाली फसलों में ये बीज बीमारी के मुख्य स्रोत होते हैं। बीज बोने के बाद रोगजनक परजीवी भी बीज के साथ-साथ बढ़ने लगता है। रोगजनक की मात्रा, रोधक क्षमता, प्रकृति व प्रतिक्रिया से प्रभावित होकर या तो पौधे की मृत्यु हो जाती है या यह पौधे के साथ-साथ बढ़ता रहता है और पौधे में वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं में रोग पैदा करता है। इस प्रकार यह परजीवी वृद्धि करते पौधों के बीज उत्पन्न करने वाले अंगों में भी पहुंच जाते हैं और परिणामस्वरूप पुन: संक्रमित बीज उत्पन्न होते हैं। अनुकूल वातावरण मिलते ही बहुत कम संख्या में भी संक्रमित बीज, पौध महामारी उत्पन्न कर सकते है। वाकर व पटेल (1964) के अनुसार फेसिओलस वल्गेरिस के केवल 12 संक्रमित बीज एक एकड़ की फसल में भयंकर परिवेश अगमारी (हैलोब्लाइट) उत्पन्न कर सकते हैं। मांडे के अनुसार सिलेरी में सैप्टोरिया ऐपिकोला का 0.07 प्रतिशत संक्रमण भी सम्पूर्ण फसल में रोग उत्पन्न करने में सक्षम है।

बीजों में संचरण की विधि

सूक्ष्म रोगजनक जीवों का बीजों में संचरण निम्न तरीकों से होता है।

1. संक्रमित पौधों के मलवे से, अर्गट स्क्लैरोसियम, संक्रमित मृदा के कण, सूत्रकृमि पिटिका तथा पुट्टी के रूप में
2. बीज द्वारा

अ. बीजों की सतह पर चिपके हुए जीवाणु, कवकतन्तु या स्क्लैरोसियम से।

ब. बीजों के आन्तरिक ऊतकों या भ्रूण में

कवक स्वयं को सुप्तकवकतन्तु के रूप में बीज के विभिन्न अंगों जैसे बीजचोल, फलभिति या भ्रूण में स्थापित कर लेता है। जीवाणु का संचरण प्राय: भ्रूण में स्थित रहते हैं परंतु टोवैको मोजेक विषाणु बीज की सतह पर पाया जाता है। सूत्रकृमि बीजों के ऊपरी सतह पर गाल के रूप में पाए जाते हैं। विभिन्न सूक्ष्म रोग जनक जीवों का संचरण भिन्न-भिन्न विधियों द्वारा होता है। जब देश के एक क्षेत्र से उत्पन्न बीज दूसरे क्षेत्रों में भेजा जाता है जहां की कृषि जलवायु सर्वथा भिन्न होती है और यदि बीज संक्रमित है तथा वहां की जलवायु रोगजनक की वृद्धि के अनुकूल है या रोगजनक का अन्य परपोषी उपलब्ध है या अन्य विभेद उपलब्ध है जिससे संयोग कर रोगजनक कोई अत्यन्त भंयकर व्याधि/रोग उत्पन्न करता है, उस दशा में फसल को सर्वाधिक हानि होती है व बीज उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

सन् 1969 में वर्टीसीलियम म्लानिरोग कोयम्बटूर के एक छोटे से क्षेत्र में देखा गया व 3-4 वर्षों के बाद यह रोग देश के 3 प्रदेशों में व्यापक रूप से फैल गया। इसी प्रकार मूंगफली का किट्टरोग (पक्सीनिया अरैचिडिकोला) सर्वप्रथम पंजाब में सन् 1972 ई. में सूचित किया गया व सन् 1974 ई तक यह रोग गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार तथा अन्य मूंगफली उत्पन्न करने वाले राज्यों में भयानक रूप से फैल गया। संक्रमित बीजों के कारण भंडारण गृहों में रखे गये बीज भी नष्ट होने लगते है। किसी विशेष रोगजनक से संक्रमित या अर्गट स्क्लैरोसियम मिले बीज मनुष्य व जानवर दोनों के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। कपास, मूंगफली, अखरोट व अन्य नटों के बीज जोकि ऐस्परजिलस फलैबस से संक्रमित होते है, अफ्लाटाक्सिन उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार ज्वार व बाजरा के बीजों के साथ मिले अर्गट स्क्लैरोसियम मनुष्य एवं पशु दोनों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

बीजोपचार कैसे करें

1. शुष्क बीजोपचार (ड्रायसीड ट्रीटमेंट) :

बीजोपचार के लिए एक यंत्र होता है, जिसे बीज सम्मिश्रण यंत्र (सीड ट्रीटिंग ड्रम) कहते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि जितनी मात्रा के बीज को उपचारित करना हो उसके लिए आवश्यक उपयुक्त दवा की मात्रा लेकर बीज एवं दवा को ड्रम में डाल दें फिर ड्रम के मुंह को अच्छी तरह

बंद कर दे, अब ड्रम को लगभग 5 मिनट तक इतना घुमाएं कि बीज के ऊपर दवा की हल्की पर्त दिखाई देने लगे तब बीज को निकाल लें व फिर उपचारित बीज की बुवाई करें। यदि सीड ट्रीटिंग ड्रम उपलब्ध न हो तो बीजोपचार एक मिट्टी के घड़े, संकरे मुंह वाले बर्तन या पॉलीथीन की थैलियों द्वारा भी किया जा सकता है।

2. गीला बीजोपचार (सीडडिप) :

इस विधि में बीजोपचार के लिए पानी में घुलनशील दवाओं का उपयोग किया जाता है। मिट्टी अथवा प्लास्टिक के बर्तन में आवश्यक मात्रा में पानी एवं दवा लेकर घोल बना लें एवं इस घोल में बीज को लगभग 10 मिनट तक डुबाकर रखें बाद में बीज निकालकर बोनी करें यह विधि विशेषकर बरसीम, आलू के बीजों के लिए उपयुक्त है।

बीजोपचार करते समय बरती जाने वाली सावधानियां :

1. उपचारित बीज को किसी गीली जगह पर न रखें।
2. बोनी को जितनी आवश्यकता हो उतनी ही मात्रा में बीज का उपचार करें।
3. उपचारित बीज को घरेलू उपयोग में न लाए, क्योंकि यह जहरीले होते हैं।
4. बीजोपचार के लिए दवा खरीदते समय दवा के बनने एवं समाप्ति की तिथि अवश्य देखें।
5. हाथों में दस्तानों या पॉलीथीन और मुख पर नकाव या कपड़े का प्रयोग करना आवश्यक है।
6. हाथ या पैर में घाव या खरोच हो तो उस व्यक्ति से बीजोपचार न करवाएं।
7. बीजोपचार बंद कमरे में न करें व उपचारित बीज का भंडारण न करें।
8. बीजोपचार करने के बाद हाथ, पैर व मुख को साबुन से दो तीन बार अच्छी तरह से धो लें।

चारा फसलों में बीजोपचार

फसल	बीजोपचार की मात्रा
1. बरसीम	–थाइरम, वेविस्टीन एवं कार्बोफयूरॉन 2.5 ग्राम/कि. बीज की दर से
2. जई	– थाइरम 2 ग्राम/किलो की दर से, आक्सीकारवोक्सिन 2.5ग्राम/किलो की दर से
3. रिजका	– वेविस्टीन 2.5 ग्रा./किलो की दर से।
4. लोबिया	–जिनेव अथवा जिरम का 0.2 प्रतिशत घोल
5. ज्वार/चरी	थाइरम द्वारा 0.3ग्रा./किलो की दर से

बीजारूढ़ रोग कारकों के उन्मूलन के उपाय:

बीजारूढ रोग कारकों के उन्मूलन के प्रमुख उपाय निम्न हैं।

अ. बीज के साथ मिले रोगजनक अंशों को अलग करना :

नमक के 20 प्रतिशत घोल में (20 किलो नमक 100 ली. पानी में) बीज को डुबाएं। रोग जनक व अन्य खराब बीज जो बीज के साथ मिले रहते हैं, वे सभी सतह पर उतरा आते हैं। सावधानी पूर्वक पानी को निथारकर रोगजनक अंशों एवं हल्के खराब बीजों को अलग कर लें। स्वस्थ भारी बीज जो तलहटी में बैठ जाएं, उन्हें अलग कर 2 बार साफ पानी में धोकर फिर दवाओं से बीजोपचार करें।

ब. दवाओं द्वारा बीजोपार :

ये दवायें दो प्रकार की होती है।

1. अदैहिक दवाएं : इन दवाओं के उपचार से बीज की बाहरी (ऊपरी) सतह पर उपस्थित रोगजनक नष्ट किए जाते हैं कुछ मुख्य बीजोपचार के लिए प्रयोग में आने वाली अदैहिक दवायें निम्न हैं–थाइरम, कैप्टान, डायफोलेटान, सेरेसान, एगोलॉल, एराटिन एवं जिनेव आदि।

2. दैहिक दवायें : इन दवाओं के उपचार से बीज के भीतर (अंदर) रहने वाले रोगकारक नष्ट किए जाते जैसे–वीटावैक्स, वेवेस्टीन, वेनलेट आदि।

स. जैव नियत्रित विधियां :

I. काली सेना द्वारा : यह एक फंगस (फफूँद) है जिसे ऐस्परजिलस नाइजर कहते है इससे मिट्टी व बीज दोनों उपचारित होते हैं इसके 8 ग्राम/किलो बीज को उपचारित कर बीमारी युक्त मृदा में उपयोग करने पर मृदाजनित रोगों का नियंत्रण होता है एवं सामान्य मृदा में 4 ग्राम/किलो बीज उपचारित करना चाहिए।

II. ट्राइकोडर्मा द्वारा : ट्राइकोर्डमा विरिडी व ट्राइकोडर्मा की अन्य प्रजातियों द्वारा बीज उपचार 4–10 ग्राम प्रति किग्रा. बीज में उपयोग करते है। मृदा उपचार के लिए 2–5 किलो ट्राइकोडर्मा इनोकुलम 50 किलो गोबर की खाद के साथ मिला देते हैं जो कि एक हेक्टेयर के लिए काफी होता है। ट्राइकोडर्मा रोगथाम के साथ–साथ पौधों को पोषण भी प्रदान करते हैं।

III. माइकोराइजा द्वारा : माइकोराइजा के कल्चर को बीज के आसपास रहना चाहिए इसके लिए बीज बोने से पहले वाम कल्चर को खेत में छिड़क देना चाहिए। सामान्य रूप से 2–4 किलो वैम कल्चर एक एकड़ खेत के लिए काफी होता है। वैम फफूंद पौधों को पोषण के साथ–साथ बीमारियों से भी रक्षा करते है।

IV. नील हरित शैवाल : जल अधिक मात्रा में उगने वाली फसलों जैसे धान आदि पौधों में रोपाई के समय नील हरित शैवाल कल्चर 10 किलोग्राम/हेक्टेयर डालते हैं। एक बार नीलहति शैवाल की पर्याप्त वृद्धि होने पर मिट्टी से उपजित बीमारियां नहीं आती।

V. जीवाणु जनित खाद : राइजोवियम, ऐजोटोवैक्टर, एजोस्पाइरिलम, स्यूडोमोनास, वेसिलस जीवाणु व ऐस्परजिलिस फफंदू की कुछ प्रजातियां पौधों में पौषण के साथ–साथ रोगजनक परजीवियों का भी नियंत्रण करते है। 10 प्रतिशत गुड़ या चीनी का घोल बनाकर उसे ठंडा करने के लिए रख दिया जाता है ठंडा होने पर उसमें जीवाणु का इनाकुलम मिलाकर उपयुक्त बीज की मात्रा मिला दी जाती है। जब बीजों के ऊपर एक पर्त चढ़ जाती है तो उन्हें हल्का सुखा लिया जाता है जिससे वे बोने योग्य हो जाते हैं। ❑

नये बाग लगाये

सुनील कुमार, ए.के. शुक्ला एवं एस.के. गुप्ता

कृषि में जोखिम कम करने के लिए कृषि विविधीकरण अपनाने की सलाह दी जाती है। इस विविधीकरण में सर्वप्रथम खेती के साथ-साथ फल वृक्षों का बाग लगाना लाभदायक पाया गया है। क्योंकि फल वृक्ष गहरी जड़ों वाले होते है, जिसके कारण विषम परिस्थितियों, जैसे सूखा, अतिवृष्टि, असमय वृष्टि तीनों दशाओं में भी कुछ न कुछ उपज देकर जोखिम कम करते हैं। नये बाग लगाने का तात्पर्य 15-20 वर्षों की योजना बनाना है। जो फल वृक्ष लगाते हैं वह कम से कम 15-20 वर्षों तक अच्छी फसल पाते हैं। इसलिए नये बाग लगाने के पूर्व निम्न बातों को ध्यान रखना आवश्यक है।

1. मृदा-जलवायु कैसी है।
2. उचित स्थान का चयन एवं खेत की तैयारी।
3. उपयुक्त प्रजाति एवं किस्मों का चयन।
4. गड्ढे की खुदाई एवं भराव, मृदा-नमी संरक्षण।
5. फल वृक्षों की उपलब्धता।
6. फल वृक्षों का रोपण।
7. अन्त: फसलों का चुनाव एवं उत्पादन।
8. रोपण के बाद वृक्षों की देख-रेख।

नए लगाए गए बाग

1. मृदा-जलवायु

बाग लगाने से पूर्व वहां के मिट्टी के बारे में विशेषकर मृदा की गहराई (कम से कम 1-1.5 मीटर) मृदा संरचना, कार्बनिक पदार्थ एवं अम्लता का ध्यान रखें। उदाहरणार्थ, बुन्देलखंड में मार, काबर, पडवा, राकर चारा तरह की मृदाएं पायी जाती है तो राकर को छोड़कर सभी तीनों में फलवृक्षों का रोपण संभव है। इसी तरह जलवायु जैसे वहां की औसत वर्षा की मात्रा एवं वितरण का अवश्य ध्यान रखें उदाहरणर्थ बुन्देलखंड में 80-100 सेमी. वर्षा जुलाई-सितंबर के बीच होती है अत: उसी के दौरान फलवृक्षों का रोपण करें। शीत ऋतु से 3-5^0 सेन्टीग्रेड तथा ग्रीष्मऋतु में 40-45^0 सेन्टीग्रेड तापक्रम जाता है ऐसी प्रजाति को चुने जो उपरोक्त तापक्रम के प्रति सहनशील हो।

2. उचित स्थान का चयन एवं खेत की तैयारी

बाग लगाने का स्थान यदि नया है या उस पर जंगल-झाड़ी हो तो उसे कटवा कर साफ कराते हैं तथा मिट्टी पलट हल से गहरी जुताई कराकर, हैरो/कल्टीवेटर चलवा कर मिट्टी भुरभुरी करते हैं तत्पश्चात् खेत को समतल कराते हैं। साथ ही सिंचाई की व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए। फल वृक्षों को आरंभ के दो वर्ष स्थापन हेतु कम से कम जीवन यापन हेतु पानी देना आवश्यक है। जंगली जानवरों तथा मानव से बचाव हेतु सुरक्षा के लिए बाड़ या कटीले तार से घेराव करना आवश्यक है। गर्मी में लू तथा सर्दी में पाला से बचाव हेतु दक्षिण-पश्चिम दिशा में वायुरोधक पौध लगाएं।

3. उपयुक्त प्रजाति एवं किस्मों का चयन

बाग लगाने के पूर्व वहां की मृदा जलवायु के उपयुक्त फल वृक्षों के प्रजाति एवं किस्मों का चयन करें। वर्षा आश्रित क्षेत्रों में जहां 70-90 सेमी. वार्षिक वर्षा होती है वहां बलुई लाल मिट्टी में-किन्नों, बेर, अमरूद, इमली तथा काली/पड़वा मिट्टी में आंवला, शरीफा, बेल, आम, कागजी निब्बू, लगाये। इन प्रजाति की अच्छी किस्मों के कलमी पौध लगाये। जैसे -

बेर -गोला, उमरान, सेब, बनारसी कड़ाका,

बेल - मिर्जापुरी कागजी, इटावा कागजी, नरेन्द्र बेल 5, नरेन्द्र बेल 9

अनार - गणेश, कन्धारी, ढोलका, जालोर, सीडलेस

आम - दशहरी, लंगडा, आम्रपाली

करौंदा - लाल, सफेद, नेटाल फ्रम

आंवला - कृष्णा, कंचन, चकैया, नरेन्द्र आंवला 6, 7, 10

नींबू वर्गीय - कागजी नींबू, किन्नो इत्यादि

पपीता की उभयलिंगी किस्म- सोलो, पूसा मैजेस्टी, पूसा डिलीसियस, पूसा ड्वार्क।

4. गड्ढ़े की खुदाई-भराव एवं मृदा नमी संरक्षण

पपीता, करौंदा, आम की आम्रपाली किस्म को 2-2.5 मीटर तथा अनार, किन्नो, कागजी नींबू अमरूद, बेल, संतरा को 6 × 6 मीटर तथा आंवला एवं आम, लसोड़ा, जामुन को 8 × 8 मीटर की दूरी पर लगाते है। फलों की प्रजाति के चयन के बाद उपयुक्त दूरी पर निशान बनाकर रेखांकन करना चाहिए। छोटे फल वृक्षों जैसे पपीता, करौंदा के लिए 60 × 60 ×60 सेमी (लंबी, चौड़ी, एवं गहरी) तथा अन्य फल वृक्षों के लिए 1 मी × 1 मी × 1 मी (लंबी, चौड़ी, एवं गहरी) गड्ढ़े की खुदाई इस प्रकार करके उपरी आधी मिट्टी एक तरफ तथा शेष आधी

मिट्टी दूसरी तरफ डालें। इन गड्ढ़ों की खुदाई उपयुक्त समय मई-जून है। ताकि सूर्य की तेज धूप से मिट्टी का सोलराइजेन (शोधन) हो जाए। जून में वर्षा आने के पूर्व इन गड्ढ़ो को 30-50 किग्रा. सड़ी गोबर की खाद तथा 50-100 ग्राम दीमकनाशी दवा मिलाकर भरें। गड्ढ़े भरते समय उपर की आधी मिट्टी पहले डाले तथा शेष नीचे की आधी मिट्टी बाद में डालें। अर्थात् नीचे की मिट्टी उपर तथा उपर की मिट्टी नीचे हो जाए। इस प्रकार भरे हुए गड्ढ़े की मिट्टी भुर-भुरी होने के कारण रोपित फल वृक्षों के जड़ों का बढ़ाव बहुत तेजी से होगा और फल वृक्ष शतप्रतिशत स्थापित होंगे। मृदा एवं नमी के संरक्षण के लिए बंधीकरण, फल-पौध के बीच-बीच मे छोटे गड़ढ़े या मल्चिग का प्रयोग करें ताकि वर्षा का पानी ज्यादा दिनों तक खेत में नमी बनाए रहे।

5. फल वृक्षों की उपलब्धता

वर्षा ऋतु में बाग लगाने के पूर्व ही चयनित प्रजाति एवं किस्मों की उपलब्धता निश्चित कर लें। अच्छा होगा आंशिक/पूर्ण भुगतान करके पौधे सुरक्षित करा लें। पौधे सरकारी, पंजीकृत या विश्वसनीय पौधशाला, राजकीय उद्यान विभाग, कृषि विश्वविद्यालय या भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की पौधशाला से खरीदें।

6. कलमी पौध खरीदते समय निम्न बातों का ध्यान रखें।

1. कलमी पौध में मूलवृत्त एवं शाख का जुड़ाव परिपक्व हो।
2. जुड़ाव पर बहुत बड़ी गांठ न बनी हो।
3. जुड़ाव के नीचे अर्थात मूलवृत्त से शाखा न निकली हो।
4. पौधा 1-2 वर्ष ही पुराना हो।
5. पौधे की मिट्टी की पिंडी टुटी न हो, जड़ें दिखती हुई न हो।

जब पौध स्थानान्तरण हेतु कराये तो निम्न बातों का विशेष ध्यान दें।

1. पिंडी को लंबी घास, मूज या कांस में लपेट कर रखें।
2. ज्यादा दूर ले जाने के लिए पिंडी को टोकरी या कार्टून में ठीक से लगाकर बाधें ताकि पौध हिलने पर पिंडी न टूटे।
3. पौधों पर ज्यादा पत्तियां हो तो कुछ कम कर दें।
4. पौधों पर पानी का छिड़काव करें एवं पौध छाया में रखें।
5. यदि पौधा अधिक दिनो तक रखना हो तो पौधों को पिंडी सहित 30 सेमी. गहरे गड्ढ़े में दबा दें एवं पानी का छिड़काव करते रहें।

6. फल वृक्षों का रोपण

वर्षा ऋतु में जब दो-तीन अच्छी बरसात हो जाती है तो जून में भरे हुए गड्ढ़े धसकर चारों ओर से दरार बना लेते हैं। इससे यह विदित होता है कि गडढ़ा नमी से संतृप्त हो गया। साथ ही जब वर्षा हो रही हो तो उसी समय पौधा रोपित करें तथा जहां तक सम्भव हो पौधे सांयकाल रोपें जिससे उस्वेदन कम होने से पौधे पर जोर नहीं पड़ेगा। रोपने के तुरंत बाद मिट्टी को दबा दें एवं पानी अवश्य लगाएं जिससे जड़ों के चारों ओर की वायु निकल जाए। रोपण के पूर्व पिंडी की घास, मूज, कास या पॉलीथीन अवश्य निकाल लें। गड्ढ़े से पिंडी के बराबर ही मिट्टी निकालें। पौधा गड्ढ़े के बीचों बीच लगायें। मूलवृत्त एवं शाख का जोड़ जमीन से 20-25 सेमी उपर रहे। लगाने के बाद लकड़ी की शाखा पर दीमकनाशी दवा लगाकर उससे पौधों को सहारा दें।

7. अन्तः फसल का चुनाव

फलवृक्ष लगाने के -4 वर्ष बाद फलत में आते हैं अत: उनके बीच में यदि सिंचाई के साधन हो तो सब्जियों की खेती अन्यथा सामान्य रूप से जिस फसल की खेती करना चाहे कर सकते हैं यदि सिंचाई के साधन उपलब्ध नहीं है और पशुपालन हो तो घास एवं दलहनी चारा फसलों की खेती भी कर सकते हैं।

8. रोपण के बाद फल वृक्षों की देख रेख :

फल वृक्षों के रोपण के बाद आरंभ के दो वर्ष तक अच्छी देख-रेख की आवश्यकता होती है। जैसे-

1. वर्षा ऋतु के बाद शुरू के दो वर्ष तक समय पर पानी थालों में लगायें। पानी शाम को लगाना अच्छा रहता है।
2. प्रत्येक सिंचाई के बाद थालों की गुड़ाई करें। थालों में खर-पतवार न उगने दें।
3. सर्दी में पाले से तथा गर्मी में लू से बचाव के लिए ढक कर रखें।
4. मूलवृत्त से कल्ले ने निकलने दें।
5. रोग या कीट का प्रकोप देखें तो तुरंत कवकनाशी या कीटनाशी दवा का छिड़काव करें।
6. सहारे के लिए जो लकड़ी लगाएं उस पर दीमकनाशी दवा का अवश्य लेप करें।
7. यदि कोई पौधा मर गया हो तो समय रहते उसको पुन: रोपित करें।

इस प्रकार उपरोक्त बातों को ध्यान रखकर बाग लगायेंगे, तो निश्चित रूप से आपको लंबे वर्षों की योजना सफल होगी। आपका बाग स्थापित होगा और आपको अच्छी उपज, अच्छी आय प्राप्त होगी।

❑

हिंदी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का प्रमुख स्रोत है।

—सुमित्रानंदन पंत

जायद में ज्वार से हरा चारा हेतु उन्नतिशील प्रजातियां व खेती तकनीक

सुनील कुमार, राजीव कुमार अग्रवाल एवं सुशील कुमार खरे

ज्वार

जायद में ज्वार एक आदर्श चारे की फसल है क्योंकि इसकी बढ़वार शीघ्र होती है। इस विशिष्ट के कारण यह देश के विभिन्न क्षेत्रों में एक सशक्त और अधिकतम चारा आपूर्ति का स्रोत है। इसमें एक कटाई से अधिक चारा उत्पादन क्षमता (300-400 कुन्तल प्रति हेक्टेयर हरा चारा) के कारण विभिन्न उपयोग जैसे हरी कुट्टी, साइलेज तथा कडवी के रूप में किया जाता है। एक कटाई में 50 प्रतिशत फूल वाली अवस्था में कटाई करने पर दुधारू पशुओं के लिए अधिक पौष्टिक चारा बनता है। बहुकटाई देने वाली ज्वार 50 से 55 दिन पर प्रथम कटाई हेतु तैयार हो जाती है। इसके उपरांत 4 से 5 कटाई 45 दिन के अंतर पर 7 से 8 माह तक ली जा सकती है। ज्वार के हरे चारे में लगभग 7 से 9% प्रोटीन, 30 से 32% रेशा, 48 से 50% उदासीन उपमार्जक रेशा (न्यूट्रल डिटरजेंट फाइबर), 0.3 से 0.5% कैल्सियम, 0.2 से 0.4% फासफोरस, 50 से 60% कुल पाचनशील तत्व (टोटल डायजेस्टेबुल न्यूट्रिएंट), 2 से 5% पाचनशील क्रूड प्रोटीन (डायजेस्टेबुल क्रूड प्रोटीन) तथा 50 से 60% शुष्क पदार्थ पाचनशील होती है। यद्यपि ज्वार का पौष्टिक मूल्य संतोषजनक है किंतु इसको 50% फूल अवस्था में कटाई करने पर प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा चारे में मिल सकती है।

भूमि तथा जलवायु

ज्वार की खेती सभी तरह की भूमि पर की जा सकती है किंतु क्षारीय तथा अम्लीय भूमि में इस फसल से अच्छा उत्पादन नहीं प्राप्त होता क्योंकि कम अंकुरण के कारण पौध संख्या कम हो जाती है। सर्वोत्तम उपज के लिए दोमट तथा बलुई दोमट सबसे उपयुक्त सिद्ध हुई है। उचित जल निकास वाली गहरी काली मिट्टी में भी इसकी अच्छी उपज मिलती है। किंतु बलुई भूमि इसके लिए अनुपयुक्त है। अच्छी खेती के लिए सामान्य पी. एच. मान वाली भूमि ज्वार के लिए सबसे उपयुक्त हैं। ज्वार की सर्वाधिक विशिष्टता उसके सूखा व जल सहनशीलता की क्षमता के कारण है। तापक्रम तथा ऋतुओं की विभिन्नता का फसल की बढ़वार पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। बुवाई के समय मृदा का तापमान लगभग 20 डिग्री सेल्सियस अति उत्तम है।

उन्नतिशील प्रजातियां

आर्थिक दृष्टिकोण से सफल खेती के लिए नवीनतम व उत्तम प्रजातियों का चुनाव विशेष महत्वपूर्ण है। इसलिए कृषकों को देशी प्रजातियों को छोड़कर अधिक उपज देने वाली प्रजातियों को उपनाना चाहिए। इससे बिना अतिरिक्त व्यय के अधिक चारे की उपज प्राप्त होती है। कृषकों के उपयोग हेतु विगत वर्षों में विभिन्न कृषि-जलवायु वाली परिस्थितियों के लिए देश में बहुत सी प्रजातियां विकसित की गई हैं। ग्रीष्मकालीन दशा में देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए उपयुक्त प्रमुख जातियां सारणी संख्या संख्या-1 में दर्शाई गई हैं।

अधिकतर ग्रीष्मकाल (अप्रैल-जून) में चारे की उपलब्धता हेतु एक या दो कटाई देने वाली जातियों को उपयोग में लाया जाता है। फसल की बुवाई एवं कटाई को आगे-पीछे करके चारे की बराबर उपलब्धता बनायी रखी जा सकती है। बहुकटाई देने वाली ज्वार (चारे) की प्रजातियों को ग्रीष्मकाल में लगाने पर गर्मियों और वर्षा ऋतु में 7-8 माह तक बराबर हरा चारा मिलता रहता है सघन कृषि वाले क्षेत्रों में अल्पावधि वाली जातियों (60 दिन में कटाई देने वाली) को उगाना चाहिए जब कि अन्य स्थानों में जहां पर वर्ष में एक या दो फसलें ली जाती हैं मध्यम (75 दिन में काटी जाने वाली) या बिलम्ब (75 दिन में काटी जाने वाली) वाली जातियां उगाना ठीक रहता है।

सस्य क्रियाएं

अधिक फसलोत्पादन के लिए उन्नतशील प्रजातियों के साथ-साथ उन्नत कृषि विधियों को अपनाना आवश्यक होता है। जायद में ज्वार चारे से अधिक उत्पादन हेतु निम्न उन्नतिशील वैज्ञानिक विधियों को अपनाना चाहिए।

भूमि की तैयारी

ज्वार की खेत की तैयारी के लिए गहरी जुताई की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि इसकी जड़ें झखड़ा होती हैं। बुवाई हेतु खेत की तैयारी के लिए 2 से 4 जुताइयों देशी हल या ब्लेड हेरों अन्यथा ट्रैक्टर द्वारा 2 से 4 जुताइयां पर्याप्त हैं।

सारणी - 1 ज्वार (चारे) की उन्नतिशील प्रजातियां एवं अनुकूल क्षेत्र

प्रजाति	अनुकूल क्षेत्र	हरा चारा (कुन्तल/हे.)	विशिष्टता
एकल कटाई			
यू. पी. चरी-1	उ. प्र.	330	मीठी एवं रसयुक्त तना
यू. पी. चरी-2	उ. प्र.	380	पत्तियां चौड़ी एवं गाढ़ा हरा रंग
पूसा चरी-9	सम्पूर्ण उत्तरी क्षेत्र	425	मध्यम अवधि प्रजाति (65-75 दिन), जलमग्न, अम्लीय एवं क्षारीय मृदाओं के लिए उपयुक्त
पूसा चरी-6	सम्पूर्ण उत्तरी क्षेत्र	450	अगेती प्रजाति (60-65 दिन) एवं चौड़ी पत्ती
हरियाणा चरी-136	सम्पूर्ण देश	550	रसीला तना, परिवक्कवता तक हरापन एवं अच्छी पुर्नस्फुटन क्षमता
हरियाणा चरी-260	सम्पूर्ण देश	600	मध्यमम अवधि वाली, तुलनात्मक रूप से रोग एवं कीटों से मुक्त।
राजस्थान-1	उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र	550	मध्यम अवधि वाली सूखा अवरोधक प्रजाति
दो कटाई			
एम. पी. चरी	सम्पूर्ण देश	650	65-70 दिन व कटाई देने वाली प्रजाति
जवाहर चरी-69	मध्य प्रदेश	550	दो कटाई एवं पत्ती वाली बीमारियों के लिए अवरोधी
पूसा चरी-23	सम्पूर्ण देश	650	65-70 दिन व कटाई देने वाली प्रजाति
बहुकटाई			
मीठी सूडान (एस सी-59-3)	सम्पूर्ण देश	700	4 से 5 कटाई एवं मीठा तना एवं सूखा व जलमग्न स्थिति में उपयुक्त
हरा सोना (संकर)	सम्पूर्ण देश	630	2 से 3 कटाई एवं तीव्र प्रस्फुटन क्षमता एवं पतला तना
पंजाब सुडेक्स (संकर)		600	3-4 कटाई एवं अधिक कल्ले
पी सी एच-106 (संकर)	सम्पूर्ण उत्तरी क्षेत्र	650	3-4 कटाई एवं अधिक कल्ले
प्रो एग्रो चरी (एस एस जी-988)	सम्पूर्ण देश	700	3-4 कटाई, एवं अधिक कल्ले
एम एफ एच-3	सम्पूर्ण देश	600	3-5 कटाई, पत्ती वाली बीमारियों के प्रति अवरोधी
द्विउद्देशीय चारा ज्वार			
सी एस वी-15	उत्तरी पश्चिमी एवं मध्य क्षेत्र	450	चारा एवं दाना दोनों के लिए उपयुक्त एकल कटाई एवं सूखा सहनशील
सी एस एच-13	उत्तरी पश्चिमी एवं मध्य क्षेत्र	480	चारा एवं दाना दोनों के लिए उपयुक्त एवं 2 कटाई तक अच्छा चारा

बुवाई से पहले भूमि भुरभुरी होनी चाहिए। खेत में ढेले न हों इससे बीज के अंकुरण पर प्रभाव पड़ता है। ऐसे क्षेत्रों में जहां पर गालमिज कीड़े की समस्या हैं, भूमि में 3 ग्राम कार्बोफ्यूरान 1.5 किलो ग्राम की दर से क्रियाशील तत्व प्रति हेक्टेयर बुवाई से पूर्व मिलाना चाहिए।

बीज उपचार

उत्तम किस्म का प्रमाणित बीज जिसकी अंकुरण क्षमता 80% से कम नहीं हो बुवाई के लिए उपयुक्त होता है। कृषक सदैव पंजीकृत संस्था, कृषि संस्थानों या राजकीय कृषि बीज भंडार से ही प्रमाणिक बीज लेकर बोएं। इस प्रकार का बीज शुद्ध, स्वस्थ, रोग व कीट रहित होता है। अतिरिक्त सावधानी के लिए बीज को फफूंदी नाशक जैसे थीरम 0.25% या बेविस्टीन 0.1% या एग्रोसान जी. एन. 0.25% से उपचारित करके बोने पर पौधों में बीमारियां नहीं लगती हैं।

बीज दर

बीज दर का निर्धारण प्राय: बीज के आकर और फसलोत्पादन की पद्यति से होता है। छोटे बीज वाली किस्मों (सूडान टाइप) जैसे एम. पी. चरी एवं मीठी सूडान आदि की बीज दर 30-40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर और बड़े दाने वाली (सॉरघम टाइप) जैसे पूसा चेरी-1, पूसा चरी-6, हरियाणा चरी-136 तथा संकर जातियों की बीज दर 40-50 किलोग्राम प्रति हेक्टयर होनी चाहिए। यदि बीज की अंकुरण क्षमता 80 से कम हो तो उसी अनुपात में बीज दर बढ़ा देनी चाहिए। दलहनी फसलों के साथ 2:2 अत: फसल उगाने पर बीज दर लगभग आधी हो जाती है। उदाहरण के लिए ज्वार को ग्वार या लोबिया के साथ 1:1 या 2:2 पंक्ति अनुपात में बोने पर क्रमश: 25 किलो ज्वार तथा 20 किलो ग्वार या लोबिया की आवश्यकता होती है।

बुवाई का समय

ज्वार की बुवाई सामान्यत: फरवरी के अन्त से लेकर मार्च के आरंभ तक सरसों, मटर, चना, जौ आदि की कटाई के पश्चात की जाती है। फरवरी में तीसरे सप्ताह से पहले बुवाई करने पर

अंकुरण प्रभावित होता है और फलस्वरूप उपज कम होती है। उत्तरी भारत में ज्वार (चारे) की बुवाई का सबसे उत्तम समय मार्च का पहला पखवाड़ा है। परंतु मार्च के अंत तक बुवाई की जा सकती है। पूर्वी तथा दक्षिणी भारत में फरवरी बुवाई के लिए सबसे उपयुक्त समय है। खरीफ में जिस भूमि पर कोई फसल नहीं ली जाती है और उसे चारे की फसल के लिए ही रखा जाता है।

बुवाई की विधि

अच्छे उत्पादन के एवं कटाई प्रबंधन के लिए ज्वार को छिटकवां न बोकर पंक्तियों में बुवाई करना चाहिए। चारे के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25 से 30 सेंटीमीटर और पंक्ति में पौधे से पौधे की दूरी 8 से 10 सेंटीमीटर रखनी चाहिए। अंत: फसल पद्यति में दो पंक्तियां ज्वार की और दो पंक्तियां लोबिया की (2:2) 25-25 सें.मी. दूरी पर लगाना चाहिए। छोटे बीजों को 1.5 से 2.0 सें. मी. और बड़े बीजों को 2-3 सें. मी. की गहराई पर बुवाई करना चाहिए। बुवाई में विशेष रूप से इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बीज उतनी ही मोटी मिट्टी की तह से ढका हो जितना कि बीज का आकार है। ऊपरी सतह पर बोने से नमी सूखने पर और अधिक गहराई पर बोने से अंकुरण कम होता है जिससे प्रति हेक्टेयर पौधों की संख्या कम हो जाती है।

फसल मिश्रण

ज्वार प्राय: अकेली उगाई जाती है। किंतु चारे की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु इसे मिश्रित रूप में लोबिया, ग्वार, सोयाबीन, अरहर, मोठ, उडद, मूंग, सनई इत्यादि के साथ में भी उगाते हैं। ज्वार को मिश्रित फसल में लगाने पर केवल ज्वार लेने की अपेक्षा कम शुष्क पदार्थ मिलता है। परंतु क्रूड प्रोटीन की प्रति हेक्टेयर उपज अधिक मिलती है।

खाद तथा उर्वरक प्रबंध

चारा वाली फसलों में उपयुक्त एवं संतुलित मात्रा में पोषक तत्वों का उपयोग फसल की उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है खाद एवं उर्वरक की मात्रा एकल व बहुकटाई के लिए भिन्न-भिन्न होती है। सभी तरह की भूमियों में अन्य पोषक तत्वों की अपेक्षाकृत नत्रजन की कमी से ही ज्वार के पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। एक कटाई देने वाली ज्वार (चारे) की उपज पर नत्रजन का प्रभाव 120 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर तक बढ़ता है और बहुकटाई देने वाली ज्वार में यह 240 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तक पाया गया है। एक कटाई देने वाली फसल में नत्रजन की संपूर्ण मात्रा बुवाई के समय तथा बहुकटाई वाली फसल में 120 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर बोते समय तथा 40 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर प्रत्येक कटाई के पश्चात टापड्रेसिंग के रूप में दिया जाता है। एक कटाई देने वाली ज्वार में नत्रजन को विभक्त रूप में प्रयोग करना कोई लाभदायक नहीं है।

एक कटाई देने ाली ज्वार में 40 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हेक्टेयर बोते समय देने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। जबकि बहुकटाई वाली ज्वार में 40 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हेक्टेयर बोते समय तथा 20 किलोग्राम फास्फोरस एवं 40 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर एक साथ मिलाकर टापड्रेसिंग करने पर चारा उत्पादन में बढ़ोतरी पाई गई है। उन भूमियों में जहां पर पोटाश की मात्रा कम से लेकर मध्यम तक है वहां 40 किलोग्राम पोटाश प्रति प्रति हेक्टेयर देने से एक कटाई वाली ज्वार की उपज से वृद्धि होती है। जबकि बहुकटाई वाली ज्वार में कम से कम 80 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता पड़ती है पोटाश की संपूर्ण मात्रा बोते समय ही देना चाहिए। 40 किलोग्राम प्रति हेक्टयर गंधक देने से एक कटाई वाली ज्वार में लगभग 12% तथा बहुकटाई वाली ज्वार में 8% उपज में बढ़ोत्तरी होती है। गंधक को उर्वरक के रूप में देने से चारे की गुणवता में सुधार होता है साथ ही साथ क्रूड प्रोटीन का अंश बढ़ता है और अंशत: एच. सी. एन. की मात्रा भी घटती है।

जैविक खादों का उपयोग

टिकाऊ खेती व कम लागत के लिए जैविक खादों का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ने लगा है तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह उपयुक्त भी है। चारे की फसलों को प्राय: उपजाऊ भूमि पर या थोड़ी खाद देकर उगाया जाता है। ऐसी स्थितियों में जैविक खादों का उपयोग महत्वपूर्ण पाया गया हैं। कम उपजाऊ भूमि तथा थोड़ी मात्रा मे नत्रजन डाली जाने वाली फसलों में असहजीवी नत्रजन संचयक (नान सिमबायोटिक नाइट्रोजन फिक्सर्स) जैसे एजोटोबैक्टर तथा एजोसिप्रिलम का उपयोग किया जा सकता है। एजोटोबैक्टर के उपयोग से एक कटाई वाली ज्वार की उपज 14% तथा बहुकटाई वाली ज्वार में 12% की बढ़ोतरी होती है। जब कि एजोसिप्रिलम से क्रमश: लगभग 8% तथा 5% अधिक चारे की उपज का लाभ प्राप्त होता है। तथा जैविक खादों के उपयोग से एक कटाई वाली ज्वार में लगभग 10 से 15 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर क बचत की जा सकती है।

सिंचाई

जायद में उगाई जाने वाली ज्वार (चारे) की फसल को 5 से 7 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। अधिक गर्मी पड़ने पर प्रत्येक पखवाड़े में सिंचाई देना पड़ता है। जब बहुतकटाई देने वाली फसल उगाते हैं तो वर्षा ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। मानसून के पश्चात इस फसल में तीन सप्ताह में एक बार सिंचाई देना आवश्यक होता है। 100 मिलीमीटर कुल वाष्पोउत्सर्जन पर सिंचाई देना सर्वोत्तम चारा उत्पादन के लिए आदर्श पाया गया है तथा इससे जल उपयोग क्षमता भी बढ़ती है। खेत में पर्याप्त नमी के अभाव में चारे के उत्पादन व गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

खरपतवार नियंत्रण

ग्रीष्मकालीन ज्वार (चारे) में खरपतवारों का प्रकोप वर्षाकालीन ज्वार की अपेक्षा कम होता है। अधिक क्षेत्रफल में बोए गए चारे में खरपतवार नियंत्रण खरपतवारनाशक दवाओं द्वारा किया जा सकता है। अत: फसल उगने से पूर्व 1.5 किलो अट्राजीन (क्रियाशील तत्व) 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना

खरपतावार नियंत्रण में बहुत ही प्रभावशली पाया गया है। फसल उगने के बाद 1.0 किलो 2, 4-डी. क्रियाशील तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से 800 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना भी खरपतवार नियंत्रण में अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ है। दलहनी फसलों के साथ ज्वार लगाने पर एक या दो बार कल्टीवेटर या हैंड हो द्वारा अंत: कर्षण करने से खरपतवार नियंत्रण हो जाता है। ज्वार (चारे) पर स्ट्राइगा खरपतवार परजीवी का भयंकर प्रकोप पाया जाता है। इसके प्रकोप होने पर इसे फसल चक्र अपनाकर पूर्णतय: नियंत्रित किया जा सकता है।

कटाई

चारे वाली फसलों की कटाई उनकी वानस्पतिक वृद्धि एवं पौष्टिकता पर निर्भर करती है। अत: उत्तम गुणवत्ता व अधिक हरा चारा हेतु ज्वार (चारे) की कटाई 50% फूल आने पर करना चाहिए। इस दशा में काटने पर जानवरों को पौष्टिक चारा मिलता है। फूलवाली दशा में एच. सी. एन. की मात्रा 100 पी. पी. एम. से कम होती है। क्योंकि 150 पी.पी.एम. से कम एच.सी.एन. की मात्रा जानवरों के लिए सुरक्षित मानी गई है। कम पानी वाली दशा में उगाई जाने वाली ज्वार (चारे) में एच.सी.एन. की मात्रा अपेक्षाकृत सिंचित दशा में होने वाली ज्वार से अधिक होती है। प्रौढ़ता बढ़ने के साथ-साथ तना सख्त तथा लकड़ी की तरह कड़ा हो जाता है। बहुकटाई वाली ज्वार (चारे) की प्रजातियों की पहली कटाई लगभग दो माह बाद की जाती है और प्रत्येक अगली कटाई 40 दिन के अंतराल पर होती रहती है। लम्बी अवधि वाली प्रजाति को 15 सें.मी. ठूठ (इस्टबल) की ऊचाई पर दो या तीन बार फूल वाली अवस्था में कटाई करने से पौष्टिक एवं अच्छे चारे की उपज प्राप्त होती है।

❑

मैं सब भाषाओं की इज्जत करता हूं परन्तु मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो मैं यह सह नहीं सकता।

—विनोबा भावे

हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

—राष्ट्र कवि मैथलीशरण गुप्त

भारत की प्रभुसत्ता और अखंडता बनाए रखने के लिए हिंदी का प्रचार अत्यंत आवश्यक है।

—महाकवि शंकर कुरूप

आंवला मे शीर्ष रोपण तकनीक

अरूण कुमार शुक्ला एवं सुनील कुमार

उन्नतशील आंवला

हमारे देश में पर्याप्त क्षेत्रफल शुष्क एवं अर्द्धशुष्क रूप में अनुत्पादक है। आंवला के क्षेत्रीय प्रसार में सबसे प्रमुख अवरोध उच्च गुणवत्ता वाले उन्नतशील कलमी पौधों की कमी का होना है। वर्ष 2002-03 में आंवला का कुल क्षेत्रफल 49620 हेक्टेयर तथा कुल उत्पादन 150500 प्राप्त हुआ। जिसका क्षेत्रीय प्रसार प्रमुखतया उत्तर प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में है। पूर्वोत्तर तथा विध्यांचल की पहाड़ियों में प्राकृतिक रूप से उगने वाले जंगली पौधों के रूप में आंवले की जैवविधिता पर्याप्त संख्या में पायी जाती है। आंवले में परपरागण हवा, मधुमक्खी आदि द्वारा होता है। जिसके कारण देशी प्राकृतिक पौधों में पर्याप्त विविधता पायी जाती है। हमारे देश में आंवला में कम उत्पादन का सबसे बड़ा कारण ज्यादातर बगीचों का देशी प्रजाति द्वारा स्थापन है। इन बगीचों में उच्च गुणता वाले आनुवांशिक क्षमता का अभाव होता है। शीर्ष रोपण तकनीक का उपयोग देशी तथा पुराने बागों का उन्नतशील प्रजातियों द्वारा कलिकायन से जीर्णोद्धार करना है। इससे प्रजनन चक्र की अवधि भी कम हो जाती है।

तकनीक

मूलवृन्त तैयार करना

देशी पौधों में 1/3 भाग छोड़कर शेष भाग (2/3) की कटाई-छंटाई फरवरी माह में करके कटे हुए भाग पर कापर सल्फेट तथा चूने के मिश्रण का लेप लगा देते हैं जिससे फफूंद तथा संक्रमण नहीं होता है। इस कटे हुए भाग से नई शाखाएं निकलती हैं जिनमें से 2 स्वस्थ शाखाओं का चुनाव कर लेते हैं। इन चुने हुए शाखों पर मध्य जुलाई से अगस्त के मध्य पैच कलिकायन करते हैं।

सांकुर शाखा का चुनाव

सांकुर शाखा का चुनाव उच्च उत्पादकता वाले पौधों से करना चाहिए। ऐसे पौधों में फलों की तुड़ाई के उपरांत उन्नतिशील प्रजाति जिससे कलिकायुक्त शाखा लेना है, फरवरी में हल्की कटाई-छटाई करना चाहिए। जिससे फूली हुई तथा स्वस्थ कलिका का निर्माण तथा विकास होता है। शीर्षरोपण हेतु नरेन्द्र आंवला-7, नरेन्द्र आंवला - 6, कृष्णा, चकैया, कंचन, नरेन्द्र आंवला - 10 आदि प्रजातियां सर्वोत्तम पायी गयी हैं, जिनसे सांकुर शाखा का चुनाव करना चाहिए।

कब और कैसे करें शीर्ष रोपण

अर्द्ध शुष्क क्षेत्र में कलिकायन कार्य जुलाई - अगस्त में किया जाता है। पैच कलिकायन द्वारा लगभग 60-85 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त की जा सकती है। सर्वप्रथम मूलवृन्त पर पैच के आकार की मैट्रिक्स बनाकर उसमें उसी आकार की कलिका तैयार कर उसमें फिट कर पॉलीथीन द्वारा कसकर बांध दिया जाता है। सामान्यतया कलिकायन का कार्य प्रात:काल या फिर शाम को करना चाहिए तथा साथ ही साथ नव कलिकायित भाग को वर्षा से सुरक्षित रखना चाहिए अन्यथा कलिका सड़कर नष्ट हो जाती है। कलिकायन किये गये बिंदु के निचले भाग से निकले हुए नये प्ररोह को काट देना चाहिए।

शीर्ष रोपण के उपरांत पौध की देखभाल

शीर्ष रोपण के पश्चात् पौधे को उचित पोषण एवं जल प्रबंध की नितांत आवश्यकता होती है। इसके लिए नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश के साथ गोबर की सड़ी खाद मिट्टी में मिलाने के पश्चत् सिंचाई कर देना चाहिए। लगभग 20-30 किग्रा गोबर की खाद, 100-200 ग्राम नाइट्रोजन, 150-250 ग्राम फास्फोरस तथा 175-300 ग्राम पोटाश वर्ष में दो बार प्रथम मार्च-अप्रैल में तथा दूसरी जुलाई-अगस्त में देना चाहिए। इसके उपरांत सिंचाई कर देना चाहिए जिससे पोषक तत्वों का उपयोग आसानी से कर सकें।

शीर्षरोपण तकनीक का प्रयोग उन स्थानों पर ज्यादा लाभकारी है जहां पाले द्वारा पौधे का ऊपरी प्रभावित होकर सूख जाता है तथा देशी भाग से नई शाखा निकल आती है जिस पर शीर्ष कलिकायन द्वारा पौधे को सुधारा जा सकता है इसके अतिरिक्त प्रजनन चक्र की अवधि कम करने में भी इस तकनीक की अहम् भूमिका है जिससे नई विकसित प्रजाति का मूल्यांकन कार्य कम समय में हो जाता है। इस प्रकार गरीब एवं सीमांत कृषक जिन्होंने कई वर्षों से देशी बाग स्थापित किया है उन्हें उन्नतशील प्रजाति में रूपान्तरित किया जा सकता है।

अर्द्धसघन पद्धति द्वारा बकरी पालन

सनत कुमार महन्त, श्वेता सिंह एवं सुधीर कुमार

गाय, भैंस जैसे अन्य दुधारू पशुओं की अपेक्षा बकरी के रखरखाव में कम खर्च की जरूरत होती है क्योंकि बकरी चराई पसंद पशु है। कम खर्च में बकरी पालन की वजह से हमारे समाज के गरीब वर्ग के ज्यादातर लोग अपने परिवार के भरण-पोषण तथा दूध की आवश्यकता के लिए बकरी पालन से जुड़े हुए हैं और कुछ लोग इसे व्यवसाय के रूप में अपनाने के लिए प्रयासरत भी हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ती हुई बकरी के मांस की मांग और दिन - प्रतिदिन बढ़ती हुई जनसंख्या के लालन-पालन के लिये चरागाहों की संख्या कम होती जा रही है, लोगों की खान-पान तथा रहने की आश्यकता को पूरा करने के लिए भूमि का उपयोग अनाज उत्पादन और घर बनवाने में होने के कारण चरागाहों का क्षेत्रफल कम होता जा रहा है। इन दो कारणों की वजह से बकरी पालन की ऐसी पद्यति की आवश्यकता है जिसमें चरागाहों पर निर्भरता कम से कम हो।

चरागाह में चराई करती बकरियां

अर्द्धसघन पद्यति एक ऐसी पद्यति है, जिसमें चरागाह का उपयोग एक सीमित अवधि के लिए चराने के लिए किया जाता है। जब चरागाह की सुविधा केवल सीमित क्षेत्र में उपलब्ध हो और चारे की मात्रा भी आवश्यकता से कम हो। इस पद्धित को अपनाने से बकरी के आहार की पूर्ति चराई के साथ-साथ आवश्यकतानुसार घर पर दाना और सूखे चारे देने से हो जाती हैं।

इस पद्धति की विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

- कम पूंजी निवेश
- कम श्रम निवेश
- कृषि उत्पादो का सीमित उपयोग
- संतोषजनक दुग्ध उत्पादन
- कृषि अयोग्य भूमि का चरागाह के लिए उपयोग
- जंगली जानवरों से सुरक्षा

सीमित चरागाह उपलब्ध होने के कारण ऐसा प्रबंध करना चाहिए जिससे उपलब्धता तथा गुणवत्ता दोनों में सुधार होता रहे। चरागाह की गुणवत्ता जानने के लिए चराई का समय ज्ञात होना अति आवश्यक है। अर्द्धसघन पद्यति से बकरी पालन करते समय पालक को कुछ बिंदुओं पर जानकारी होना आवश्यक है। चरागाह में चारे की मात्रा तथा गुणवत्ता निम्नलिखित जानकारी पर निर्भर करती है।

- बकरियों की उम्र तथा व्यस्क बकरियों की संख्या
- चराई के बाद पुन: चारा चरने योग्य होने का समय
- जितना समय चारे को पुन: चरने योग्य होने में लगे, चरागाह को उससे एक ज्यादा छोटे-छोटे टुकड़ों में बाट लें।
- चरागाह का क्षेत्रफल
- चारे की प्रति हेक्टेयर पैदावार (शुष्क पदार्थ के रूप में)। चारे वाले पेड़ों से 10 से 15 किलो शुष्क पदार्थ प्रति वृक्ष प्रति वर्ष प्राप्त हो जाता है। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में ऊंची-नीची जमीन वाले चरागाहो में शुष्क पदार्थ की पैदावार सामान्यत: 8-10 कुंतल प्रति हेक्टेयर होती है।
- प्रति बकरी प्रति घंटा चारे के उपयोग की दर नवंबर से जुलाई के माह में एक व्यस्क बकरी लगभग 80-150 ग्राम तथा अगस्त से अक्टूबर में लगभग 150-250 ग्राम शुष्क पदार्थ चर कर ग्रहण कर लेती है।

केवल सीमित समय की चराई से बकरियों को पूरा आहार प्राप्त नहीं होता है उसके लिए उन्हें घर में दाना और सूखा चारा दिया जाता है। दाने से बकरियों को पोषक तत्व मिलते हैं। दाने में कम से कम 18-22 प्रतिशत प्रोटीन और 65-70 प्रतिशत कुल पाचक तत्व निर्धारित किये गये है। बकरियों के लिए दाना जुटाना बहुत कठिन कार्य नहीं है आमतौर पर पालक इसे क्षेत्रीय खाद्य पदार्थों का प्रयोग करके स्वयं तैयार कर सकते हैं। अनाज, खली तथा चोकर में 9-12, 25-45, तथा 12-18 प्रतिशत प्रोटीन पायी जाती है। इस तरह खाद्य पदार्थों को नीचे दिये गये अनुपात में मिलाकर दाना तैयार किया जा सकता है।

खाद्य पदार्थ	**मात्रा प्रति कुंतल (किलो)**
दले हुए अनाज (मक्का, जौ, जई)	45-55
खली (सरसों, मूंगफली, बिनौला, अलसी)	25-35
चौकर	15-25
खनिज मिश्रण	2
साधारण नमक	1

विभिन्न ऋतुओं में चारे से प्राप्त शुष्क पदार्थ की मात्रा के आधार पर दाने की मात्रा का निर्धारण :

ऋतु	चराई से प्राप्त शुष्क पदार्थ दैनिक मात्रा (ग्राम)	दाने की दैनिक आवश्यकता (ग्राम)
ग्रीष्म ऋतु	300	250-300

शरद ऋतु	300-600	200-250
वर्षा ऋतु	600-900	150-200

ऊपर दिये गये दाने की मात्रा के अलावा गर्भावस्था में बकरी को और दाने की आश्यकता होती है। दूध देने की स्थिति में प्रथम 90 दिनों में 300-400 ग्राम दाना प्रति कि. ग्रा. दूध उत्पादन की दर से दिया जाना चाहिए और अंतिम 45 दिनों में बच्चा देने तक 300-350 ग्राम दाना प्रति बकरी प्रति दिन देना चाहिए और प्रजनन के समय 400-500 ग्राम दाना देना चाहिए। सही ढंग से बकरी पालन करने के लिए कुछ बातों पर ध्यान देना जरूरी है। जो निम्नवत हैं।

- बकरियों को उनकी उम्र के अनुसार अलग-अलग समूह में बांट दें तथा उनके लिए पर्याप्त स्थान उपलब्ध कराएं।
- आकार में समान बकरियों को साथ रखें।
- बकरियों तथा बकरों को अलग-अलग रखें।
- दूध देने वाली बकरियों को अलग रखे तथा उनको उत्पादकता आहार दें।
- बढ़े हुए खुरों को समय-समय पर काटते रहें।
- आहार प्रदान करने के लिए प्रयोग में आने वाले उपकरणों एवं चारे दाने को पेशाब, मिट्टी आदि गंदगी से बचाएं।
- बाड़े में सफाई का ध्यान रखते हुए 10 किलो चूना पाउडर प्रति 100 वर्गमीटर क्षेत्रफल की दर से बुरकाव कर दें। यह बीमारी बढ़ाने वाले जीवाणुओं को मार देता है।
- बदलते हुए मौसम के अनुसार बाड़े में प्राय: यह बदलाव करने चाहिए।
- सर्दी में कोक्सीडिओसिस बीमारी से बचाने के लिए 3 माह तक के बच्चों के बाड़े में 10 सेन्टीमीटर मोटी घास बिछाएं।
- गर्मियों की शुरूआत में बाड़े की 6-9 इंच गहरी पुरानी मिट्टी निकालकर नई सूखी मिट्टी से बदलें।

उपरोक्त सभी उपायों के अलावा वे सभी उपाय करें जो सफल बकरी पालने के लिए आवश्यक है।

❑

राष्ट्र के एकीकरण के लिए सर्वमान्य भाषा के रूप में हिंदी से बलशाली कोई तत्व नहीं है।

—लाला लाजपत राय

हिंदी सीखने का कार्य एक ऐसा त्याग है जिसे भारत के निवासियों को राष्ट्र एकता के हित में करना चाहिए।

—श्रीमती एनी बेसेंट

हिंदी द्वारा ही सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

—स्वामी दयानंद सरस्वती

सिंचाई के लिए सही पम्प का चुनाव कैसे करें

चन्द्र शेखर सहाय

इंजन चालित अपकेंद्रीय पम्प

फसल में पौधों की बढ़ोत्तरी एवं प्रति इकाई अधिक उत्पादन के लिए खेत में उचित मात्रा में जल का प्रयोग अत्यंत आवश्यक है। जल की उपलब्धता नहरों, कुओं, नलकूपों, नदियों या तालाबों से होती है। वर्षा के द्वारा उपलब्ध जल फसल की आवश्यकता अनुसार प्राय: समान रूप से वितरित नहीं हो पाता है जिसके फलस्वरूप सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है। सिंचाई के लिए नलकूप एवं कुएं भरोसे मंद स्त्रोत हैं। इनके द्वारा उपलब्ध जल को खेत तक पहुंचाने के लिए विभिन्न प्रकार के पम्पों का प्रयोग किया जाता है। ये पम्प यांत्रिक इंजन या विद्युत मोटर द्वारा चलाए जाते हैं कृषि में मुख्य रूप से प्रयोग होने वाले पम्प निम्नलिखित हैं।

1. अपकेंद्रीय पम्प
2. टरबाइन पम्प
3. सबमर्सिबल पम्प
4. अक्षीय प्रवाह पम्प

उपरोक्त पम्प विभिन्न परिस्थितियों में कार्य में लाए जाते हैं। इनमें से उपकेंद्रीय पम्प ऐसा है जो किसानों द्वारा बहुतायत प्रयोग में लाया जाता है। यह पम्प गहराई (4.5 से 6 मीटर) से पानी उठाकर ऊंचाई तक पहुंचा सकता है। यह सस्ता, बनावट में साधारण तथा चलने में सरल होता है। यह बनावट में आसान होता है तथा पानी के साथ-साथ बालू को भी खींच कर ऊपर चढ़ा सकता है। अपकेंद्रीय पम्प में ढलुएं लोहे की केसिंग में एक इम्पेलर (रोटर) होता है। जिस पर पंखे की तरह के ब्लैड लगे होते हैं। जब यह घूमता है तो चूषण उत्पन्न होता है जो पानी को ऊपर फेंकता है। यह दबाव पानी के घूमने के कारण उत्पन्न हुए अपकेंद्रीय बल से बनता है इसीलिए इसे अपकेंद्रीय पम्प कहते हैं।

अपकेंद्रीय पम्प का चयन

सिंचाई हेतु पम्प खरीदने से पहले इससे जुड़े पहलुओं को जांच लें और उनके आधार पर निर्णय लें। प्राय: ऐसा होता है कि संचालन शक्ति (5 अश्व शक्ति या 10 अश्व शक्ति) के आधार पर पानी फेंकने की क्षमता (डिस्चार्ज) जाने बिना बाजार से पम्प खरीद लिया जाता है जब कि उसी संचालन शक्ति से निश्चित कार्य के लिए और अच्छा पम्प उपलब्ध रहता है। प्रत्येक अपकेंद्रीय पम्प एक निश्चित हेड तथा पानी के निकास की दर (डिस्चार्ज) के लिए डिजाइन किया जाता है। यह केवल उन्हीं अवस्थाओं में सबसे अधिक क्षमता देता है। यदि पम्प से पानी के निकास की दर पम्प की डिजाइन की गई दर से कम होगी तो इसकी कार्य क्षमता में बहुत अंतर आ जाएगा। ऐसा भी पाया जाता है कि ज्यादा ऊंचाई तक पम्प करने के लिए 2 पम्प का प्रयोग किया जाता है जो कि सर्वथा गलत है और पम्प पर होने वाले व्यय तथा ऊर्जा का नुकसान करता हैं। इसलिए एक निश्चित कार्य हेतु पम्प का चयन करते समय निम्नलिखित विधि का पालन करने से अच्छा डिस्चार्ज मिलेगा।

1. पहले पम्प द्वारा पानी चढ़ाए जानी वाली कुल ऊंचाई (कुल हेड) का निर्धारण करें। इसमें निम्नलिखित जुड़ते हैं।

   कुल हेड (हे)= चूषण हेड + निकासी हेड + गति हेड + घर्षण हेड

   चूषण हेड : पानी की सतह से पम्प के शाफ्ट तक की ऊंचाई का अंतर होता है। इसे नलकूप से पानी निकालते रहने के समय अर्थात जब पानी नीचे चला जाए तब लेना चाहिए।

   निकासी हेड : पम्प के शाफ्ट से जिस तल पर पानी छोड़ना हो उस ऊंचाई के अंतर को कहते हैं।

   गति हेड : पानी ऊपर जाते समय जो गति प्राप्त कर लेता है, उसमें व्यय होने वाली पम्प के द्वारा दी गई ऊर्जा, गति हेड होती है। इसे निम्नलिखित तरीके से निकालते हैं।

   $ह_{ग} = 1/2ज.ग^2$

   जहां, $ह_{ग}$ = गति हेड, मीटर

   ग = पाइप के पानी की गति, मीटर/सेकेन्ड

   ज = गुरूत्वाकर्षण 9.81 मीटर/सेकन्ड^2

   घर्षण हेड : वह हेड है जो पाइप में पानी की गति के समय विभिन्न मोड़ो, पाइप के आकार के छोटे-बड़े होने पर, फूट वाल्व, जाली आदि के घर्षण से उत्पन्न होता है। चूषण पाइप के प्रारंभ में यदि जाली का प्रयोग करते हैं तो घर्षण हेड, गति हेड का 0.95 गुना और यदि फुट बाल्ब का प्रयोग करते हैं तो यह गति हेड की 0.8 गुना होती है। उपर्युक्त सभी हेड़ों को जोड़कर कुल हेड प्राप्त कर लें।

2. पम्प द्वारा पानी निकासी की दर (डिस्चार्ज) ज्ञात करें। इसके लिए अपनी सर्वाधिक पानी की आवश्यकता वाली फसल तथा उस पम्प द्वारा सिंचित होने वाले खेत के क्षेत्रफल को लेते हुए पानी की कुल लगने वाली मात्रा निकालें। अब यह देख लें कि कितनी देर में उस मात्रा का पानी देना है, जो इस बात पर निर्भर करेगा कि उस क्षेत्र

में बिजली कितनी देर रहती हैं या आप कितने समय तक इंजन चला सकते हैं। निकासी की दर जानने हेतु निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया जा सकता है।

ब = (क्ष × द × 1000)/ स

जहां ब = पानी की निकासी की दर, लीटर/मिनट

क्ष = खेत का क्षेत्रफल, वर्ग मीटर

द = खेत में सिंचाई की गहराई, मीटर एवं

स = सिंचाई का समय, मिनट

3. अब पम्प चलाने के लिए शक्ति स्त्रोत का आकार निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात करें –

अ.श. = (ब × ह)/ 4500 × 0.736

जहां अ.श. = शक्ति स्त्रोत की अश्व शक्ति

ब = डिस्चार्ज, लीटर/मिनट

ह = कुल हेड, मीटर

अब इससे मोटर या इंजन की ब्रेक अश्व शक्ति निकालें।

ब.अ.श. = (अ.श.)/$द_प$ × $द_स$

जहां, ब.अ.श. = मोटर या इंजन की ब्रेक अश्व शक्ति

$द_प$ = पम्प की दक्षता, प्रतिशत एवं

$द_स$ = संचारण प्रणाली (वेल्ट – पुली) की दक्षता, प्रतिशत

अपकेंद्रीय पम्प के लिए $द_स$ को 60 प्रतिशत ले सकते हैं। $द_स$ के लिए, यदि पम्प, इंजन या मोटर की शाफ्ट पर ही लगा है तो इस को 95 प्रतिशत ले और यदि यह बेल्ट-पुली पर लगा है तो इसे 80 प्रतिशत लें।

ब्रेक अश्व शक्ति ज्ञात हो जाने पर पम्प के लिए प्रयोग होने वाले शक्ति स्त्रोत का निर्धारण हो जाएगा। मान लीजिए कि 4.5 अश्व शाक्ति आती है तो बाजार में उपलब्ध इसके पास थोड़ी ऊपर 5 अश्व शक्ति की मोटर या इंजन लें।

4. तदनुसार बाजार में उपलब्ध 5 अश्व शक्ति से चलने वाले निर्धारित हेड तथा डिस्चार्ज के पम्प का चुनाव करें। कभी भी हेड कम ना लें। चुनाव करते समय यह जरूरी नहीं है कि निकाले गए हेड तथा डिस्चार्ज का पम्प उपलब्ध ही हो इसलिए उस हेड तथा डिस्चार्ज के पास (ज्यादा की तरफ) उपलब्ध पम्प का चुनाव करें।
5. अगर ज्यादा ऊंचाई तक पानी खींचना है तो दो पम्प का प्रयोग न करके उस हेड के लिए उपलब्ध डबल स्टेज या ट्रिपल स्टेज पम्प का चुनाव करें और दो पम्प की जगह एक पम्प से कार्य लें। इससे दो पम्प पर होने वाला व्यय बचेगा तथा ऊर्जा की भी बचत होगी।

❑

राष्ट्र की एकता को यदि बना कर रखा जा सकता है तो उसका माध्यम हिंदी ही हो सकता है।

—सुब्रह्मणियम् भारती

अपनी मात्रभाषा बंगला में लिखकर मैं बंगबन्धु तो हो गया, किन्तु भारतबन्धु मैं तभी हो सकूंगा जब भारत की राष्ट्रभाषा में लिखूंगा।

—बंकिम चन्द्र चटर्जी

जब तक आपके पास राष्ट्रभाषा नहीं, आपका कोई राष्ट्र नहीं।

—प्रेम चन्द

जानिए उपज लागत घटाने के उपाय

नीरज कुमार दुबे, सुनील कुमार

किसान भाइयों आप यह भली भांति जानते हैं कि जिस प्रकार बूंद-बूंद से सागर भरता हैं, उसी प्रकार छोटी-छोटी बचत महाबचत के रूप में दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार खेती किसानी की छोटी-छोटी महत्वपूर्ण आवश्यक बातों पर विशेष ध्यान देकर बिना अतिरिक्त व्यय के उत्पादन लागत को आधा कर उपज उत्पादन बढ़ाकर अधिकतम लाभ अर्जित कर समृद्ध, संपन्न हो सकते हैं, तो जानिए और निम्न बातों को अपनाएं -

1. गर्मी में (रबी की फसल के बाद) खेतों की जुताई गहराई से करें जिससे भूमि का सौर विकिरण द्वारा शोधन होने से उसमें मौजूद कीट-पंतगों के अंडे/लार्वा नष्ट हो जायेंगे। इसी प्रकार फसल रोगों के लिए उत्तरदायी कवक के हाइफा, माइसीलियम उनके कोनिडीया इत्यादि नष्ट हो जायेगें तो आगामी फसलों में रोग का प्रकोप कम होगा तथा खरपतवार भी नष्ट होगा। इस प्रकार रोग एवं कीटनाशक दवा का खर्च 30-35 प्रतिशत कम किया जा सकता है।
2. समय पर बुवाई करने से अधिकतम उत्पादन प्राप्त होता है।
3. कृषि अनुसंधान संस्थानों से प्राप्त उन्नत बीज, पंजीकृत संस्थाओं, कृषि विश्वविद्यालयों एवं पंजीकृत दुकानों से क्रय करें। बीज क्रय करते समय बीज की किस्म, पैकिंग की तारीख, वजन देख कर पक्की रसीद प्राप्त करें। इस प्रकार अच्छे बीज के प्रयोग से डेढ़ गुने से भी अधिक उपज प्राप्त होगी।
4. फसलों को रोगमुक्त एवं स्वस्थ रखने के लिए बीजोपचार बहुत ही आवश्यक है। इसके लिए तांवा युक्त कवकनाशी एग्रोसेन, जीरम, थीरम, कैप्टान का 2 ग्राम/किग्रा बीज दर से उपचारित करें। इससे 50-70 प्रतिशत रोग कम किया जा सकता है।
5. कीट नियंत्रण के लिए समन्वित कीट नियंत्रण प्रबंधन अपनाएं। इसके लिए रासायनिक दवाएं, नीम, करंज के उत्पाद, कीटभक्षी कीट एवं जीवाणु द्वारा प्रबंध करें।
6. घनी बुवाई करने से बीज, निराई का खर्च बढ़ेगा। उचित पौध संख्या एवं उचित दूरी रखने के लिए उचित बीज दर से ही कतारों में बुवाई करें। जिससे फसल की बढ़त अच्छी होने से उपज भी अधिक प्राप्त होगी।
7. फसल चक्र अपनाकर उसी खेत में प्रत्येक ऋतु में बदल-बदल कर फसल लेने से रोग एवं कीट नियंत्रण में मदद मिलेगी जिससे उत्पादन लागत घटेगी।
8. जोखिम कम करने के लिए मिलवां फसलें लें।
9. भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने के लिए फसल चक्र में दलहनी-तिलहनी का फेरबदल अवश्य लें।
10. जल ही जीवन है, पानी की बचत के लिए स्प्रिंकलर ड्रिप तथा पाइपों का प्रयोग करें जिससे पानी सीधे पौधों को प्राप्त हो। इस प्रकार 70 प्रतिशत पानी की महाबचत हो सकती है। सिंचाई उपकरणों के लिए राज्य सरकार द्वारा छूट भी अनमन्य है।
11. समन्वित पोषक तत्वों द्वारा आवश्यक पोषण दें अर्थात फसलों को आवश्यक पोषक तत्व, रासायनिक उर्वरकों, कार्बनिक पदार्थ एवं जैविक पदार्थों को मिलाकर दें। इससे उपज एवं भूमि की उपजाऊ शक्ति सदैव टिकाऊ बनी रहेगी।
12. बीज, दवा, खाद क्रय करते समय गुणवत्ता की सुनिश्चितता हेतु पक्की रसीद अवश्य प्राप्त करें। इससे क्रय किए गए सामान के नकली होने की सम्भावना नहीं रहेगी।
13. समय-समय पर नवीनतम जानकारी प्राप्त करने हेतु निकटतम अनुसंधान संस्थानों, राष्ट्रीय अनुसंधान केंद्रों, कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केंद्रों के सतत सम्पर्क में रहें। कृषि गत समस्याओं के समाधान प्राप्त करें तथा आकाशवाणी, दूरदर्शन पर कृषि संबंधित कार्यक्रम अवश्य देखें।
14. समय-समय पर अपनी भूमि का परीक्षण कराकर भूमि की आवश्यकतानुसार संतुलित उर्वरक प्रयोग करें।
15. श्रम एवं लागत कम करने हेतु सदैव उन्नत कृषि यंत्रों का ही प्रयोग करें।
16. जोखिम से सुरक्षा के लिए फसलों का बीमा करायें।
17. कृषि पर प्राकृतिक जोखिम कम करने के कारगर उपाय जैसे एकांतर कृषि पद्धति कृषि वानिकी अपनायें। (एकल फसल पद्धति को दूर रखें। कृषि के साथ-साथ वृक्षारोपण एवं पशुपालन अपनायें।)
18. कृषि विविधीकरण अपनाएं-अपने मौजूद संसाधनों में ही मिश्रित फसल, कृषि वानिकी, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, मछली पालन, सब्जी उत्पादन, फल उत्पादन इत्यादि अपनाएं और जोखिम की संभावना को समाप्त करें।
19. उत्पादन के भंडारण हेतु सेंन्ट्रल वेयर हाउस की सुविधाओं का प्रयोग करें। सुरक्षित भंडारण के साथ ही भंडारित उत्पाद, मूल्य का प्रमाण पत्र प्राप्त होता है जिससे बैंक द्वारा उतना ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

❑

लोबिया एक बहुउपयोगी फसल

जे. पी. उपाध्याय

भारत वर्ष में लोबिया एक मुख्य दलहनी हरा चारा, दाना एवं सब्जी के लिए उगायी जाने वाली प्रमुख फसल है। इस दलहनी फसल में महत्वपूर्ण पोषक तत्व जैसे-प्रोटीन, शर्करा, वसा, विटामिन तथा खनिज प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसे चारे के साथ-साथ इसकी फली को सब्जी के रूप में अकेले अथवा अन्य सब्जियों के साथ मिश्रण के रूप में प्रयोग किया जाता है। लोबिया के हरे तथा सूखे बीजों को उबाल कर व डिब्बा बंदी करके प्रयोग में लाते हैं। इसके अतिरिक्त लोबिया को बिस्कुट बनाने के लिए बैकिंग पाउडर के रूप में, शाकीय दूध बनाने तथा दलहनी श्वेतसार बनाने में प्रयोग करते हैं। इसकी खेती से मृदा की उर्वरा शक्ति तो बढ़ती ही है साथ ही मृदा क्षरण को रोकने के लिए आवरण फसल के रूप में भी इसे उगाया जा सकता है। इसकी खेती ग्रीष्मकाल के साथ-साथ वर्षा ऋतु में भी सफलतापूर्वक की जाती है। चारे के लिए इसे ज्वार, बाजरा, मक्का, नेपियर एवं गिनी के साथ अन्त: फसल के रूप में अकेले फसल के रूप में बोया जा सकता है।

चित्र -7 लोबिया

मृदा एवं खेती की तैयारी : लोबिया की खेती के लिए बलुई दोमट मिट्टी जिसका पी.एच. मान 6-7 के मध्य हो उपयुक्त होती है। खेत की एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तत्पश्चात दो-तीन जुताई हेरो से करके पाटा लगा देते हैं जिससे मिट्टी भुरभुरी हो जाए।

बुबाई का समय : उत्तर भारत में लोबिया की बुबाई ग्रीष्म एवं वर्षा दोनों ऋतु में की जाती है। सामान्तय: वर्षा ऋतु में जून जुलाई एवं बसत ऋतु में फरवरी मार्च इसका सर्वोत्तम समय है।

बीज की मात्रा : चारे के प्रयोग के लिए यदि लोबिया को अकेले फसल के रूप में बोना है तो बीज की मात्रा 40-50 कि.ग्रा./हे. और ज्वार, बाजरा, मक्का नेपियर एवं गिनी के साथ अन्त: फसल के रूप में बोना हो उस स्थिति में बीज की मात्रा 15-20 कि.ग्रा./हे. रखनी चाहिए। सब्जी एवं बीज उत्पादन में बौनी किस्मों के लिए 20 कि.ग्रा/हे. तथा लता वाली प्रजाति के लिए 12-15 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है।

1. चारे की प्रमुख प्रजातियां

प्रजाति	अवधि (दिन)	हरा चारा उपज कु./हे.
कोहनूर	90 से 110	300-350
बुन्देल लोबिया-1	60 से 90	250-300
बुन्देल लोबिया-2	60 से 90	250-300
ई.सी. - 4216	90 से 110	250-280
रासियन जाइंट	100 से 120	240-265
यू.पी.सी.- 5286 एवं 5287	100 से 120	230-270
इगफी-95-1	60 से 90	280-320

2. सब्जी की प्रमुख प्रजातियां

प्रजातियां	अवधि (दिन)	हरा चारा उपज कु./हे.
काशी शयामल	50	75-100
काशी गौरी	45-50	100-125
काशी उन्नत	40-45	125-150
काशी कंचन	45750	150-200
पूसा कोमल	50	70-80
लोबिया-263	45-50	120
आई.आई.एच.आर.-एच	40-45	100-125
सेलेक्शन-2-1	45-50	75-100
अर्का गरिमा	45-50	80-85

बीज उपचार : किसी भी बीज को बोने से पूर्व उसका उपचार अन्ततः प्राप्त होने वाले फसल की मात्रा तथा उसकी गुणवत्ता की वृद्धि में सहायक होते हैं। इसके अलावा बीजोपचार से फसलों में अंकुरण शीध्र और भली-भांति होता है तथा बीमारियों से बचाव होता है। लोबिया के उपचार हेतु बेविस्टिन तथा जेड-78 नामक दवा का प्रयोग प्रत्येक 2-5 कि.ग्रा. करने पर लोबिया के बिल्ट की रोकथाम सुनिश्चित हो जाती है। साथ ही राईजोबियम कल्चर का प्रयोग करने से बीज का अंकुरण अच्छा होता है।

बुबाई विधि : सामान्यत: चारे के लिए उगाई जाने वाली लोबिया की बुबाई छिटकवां एवं पंक्ति दोनों तरफ से की जाती है परन्तु पंक्तियों में बुबाई करना उपयुक्त माना जाता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 50-60 सेमी तथा बीज से बीच की दूरी 10 सेमी रखना अच्छा होता है।

खाद एवं उर्वरक : लोबिया की अच्छी फसल

के लिए 20-25 टन अच्छी सड़ी गोबर की खाद खेत तैयार करने से 15 दिन पहले खेत में मिलाना चाहिए। उर्वरकों में 25 कि.ग्रा. नत्रजन 60 कि.ग्रा. फास्फोरस, 60 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट देना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस, पोटाश एवं जिंक की पूरी मात्रा अंतिम जुताई के समय खेत में मिलाना चाहिए। शेष नत्रजन की मात्रा बुबाई के 30 दिन बाद छिड़काव द्वारा करना चाहिए।

अन्त: सस्य क्रियाएं : बुबाई के उपरांत एवं अंकुरण से पूर्व एट्राजीन नामक खरपतवार नियंत्रक रसायन 1.5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करने से खेत खरपतवार विहीन होता है। साथ ही बुबाई के एक महीने बाद निराई-गुडाई करना फसल उत्पादन के लिए अच्छा रहता है।

उन्नत फसल चक्र : (अ) ज्वार/मक्का/बाजरा + लोबिया (खरीफ)- बरसीम + सरसों (रबी) - हाईब्रिड ज्वार + लोबिया (ग्रीष्म), (ब) संकर नेपियर/गिनी + लोबिया (खरीफ) - संकर नेपियर/गिनी + बरसीम/कई कटान वाली जई (रबी)- संकर नेपियर/गिनी लोबिया (ग्रीष्म)

सिंचाई : बुवाई के समय खेत में पर्याप्त मात्रा में नमी होना आवश्यक है। सिंचाई की मात्रा एवं संख्या मौसम पर निर्भर करती है। वर्षा ऋतु में सामान्यत : सिंचाई की आवश्यकता नहीं रहती है परंतु ग्रीष्मकाल में प्रत्येक 8-10 दिन के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए जिससे भूमि में पर्याप्त नमी बनी रहें।

फसल की कटाई एवं फली तुड़ाई : सामान्यत: चारे के लिए फसल 60 से 90 दिन में सब्जी की फसल 40-45 दिन में तथा दाने की फसल 90-120 दिन में तैयार हो जाती है। सब्जी के लिए पूरे फसल काल में लगभग बोनी किस्मों की 3-4 तथा फैलने वाली किस्मों की 12-16 तुड़ाई हो जाती है। बीज उत्पादन 12-18 कु. हे. प्राप्त की जा सकती है।

प्रमुख कीट एवं रोग

कीट का नाम	लक्षण	नियंत्रण
माहू	पत्तियों तथा शाखाओं को चूसता है जिससे फसल की बाढ़ रूक जाती है।	डाईमेथेएट 30 ई.सी. की 1-2 मिली लीटर या मिथाइल डेमोरान 25 ई.सी. की 2 मि. जी. अथवा मैलाथियान 50 ई. सी. का 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करें।
फली छेदक	फली में छेद कर बीज को खा जाता है।	इंडोसल्फान 1.5 से 2.0 मि. जी. अथवा थायोडान कीटनाशी दवा 2 मि.ली. प्रति पानी में घोल बना कर छिड़काव करें।
हरा फुदका	शिशु तथा प्रौढ़ दोनों पत्तियों की निचली सतह से रस चूसता है जिससे पत्ती किनारे से पीली पड़ कर सिकुड़ जाती है जिससे पौध की बाढ रूक जाती है।	एक्टारा नामक कीटनाशी 5 ग्राम को 20 ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
लीफ माईनर	यह कीड़ा पत्ती में सफेद धागे की तरह बारीक सुरंग बनाता है जिससे फसल की बाढ़ रूक जाती है तथा पत्ती सूखने लगती है।	नीम गोल्ड 2 मि.जी. प्रति ली. पानी या नीम की गिरी का अर्क 4 प्रतिशत का छिड़काव करें जिसे पुन: 15 दिन बाद दोहराएं।
प्रमुख रोग		
चिर्णिल असिता	यह रोग पत्ती, तना तथा फली तीनों को प्रभावित करता है पत्तियों पर हल्का सफेद चिन्ह बनाता है जो बाद में सफेद पाउडर के रूप में पूरी पत्ती को ढक देता है जिससे पत्ती गिर जाती है।	गंधक का चूर्ण 3 ग्राम प्रति ली. पानी की दर से 600 से 700 ली. पानी में घोल बना कर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। ज्यादा प्रकोप होने पर पेन्कोनाजोल 0.05 प्रतिशत (1 मी.ली. दवा प्रति ली. पानी में) या कैलीकसीन 0.1 प्रतिशत (आधा मि.ली. दवा 1 ली. पानी में) के घोल को 10 दिनों के अन्तराल पर 2-3 बार छिड़काव करें।
उकठा एवं जड़ सड़न	यह फसल जनित रोग है पत्तियां पीली पड़ कर सूख जाती है।	फसल चक्र अपनाएं तथा बुबाई से पूर्व बीज को कार्वोडाजिम 2.5 ग्राम प्रति कि. ग्राम बीज की दर से उपचारित कर बुबाई करें।
स्वर्णपीत रोग	यह माहू द्वारा फैलने वाला रोग है इसमें गहरे पीले रंग के धब्बे बनते है। तत्पश्चात पौधे की बाढ़ रूक जाती है।	माहू कीटनाशक दवा कर प्रयोग करें। रोगग्रस्त पौधों को नष्ट करें।
पर्णदाग	पुरानी पत्तियों में भूरे धब्बे बन जाते है जो बाद में काले होकर गिर जाते है।	रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें उचित फसल चक्र अपनाएं थायनेट मिथाईल 1 ग्राम दवा प्रति ली. पानी में घोल बना कर छिड़काव करें।

उपयोगी चारा - बरसीम

मनोज कुमार एवं ओम प्रकाश जोशी

बरसीम

इस समय भारत एक मुख्य दुग्ध उत्पादक देश है। श्वेत क्रांति को कायम रखते हुए यह आवश्यक है कि दुधारू पशुओं के उन्नतशील नस्लों में सुधार के साथ-साथ संतुलित पशु आहार की समुचित व्यवस्था भी हो। हरा चारा पौष्टिकता से भरपूर होना चाहिए। ऐसा ही प्रमुख चारा रबी मौसम का बरसीम है, जिसे इजिशियन क्लोवर भी कहते हैं। बरसीम का वानस्पतिक वैज्ञानिक नाम ट्राइफोलियम एलेक्जान्ड्रिनम है। बरसीम के हरे चारे में कैरोटीन नामक पदार्थ प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। जो दुग्ध उत्पादन में वृद्धि करता है। इसमें लगभग 20 प्रतिशत प्रोटीन और शुष्क पदार्थ की पाचनशीलता 70 प्रतिशत तक पाई जाती है। साथ ही इसके चारे में खाने वाले लवण जैसे कैल्शियम एवं फॉस्फोरस प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। बरसीम से उत्तम किस्म का साइलोज भी तैयार किया जाता है। अंतिम कटाई के उपरांत बरसीम को हरी खाद के रूप में भी उपयोग कर सकते हैं। बरसीम एक दलहनी फसल है। बरसीम को प्राय: परंपरागत विधि से उगाया जाता है। जिसके फलस्वरूप निम्न गुणवत्ता वाली कम उपज प्राप्त होती है। अत: उच्चगुणवत्ता वाली अधिक उपज लेने के लिए बरसीम को वैज्ञानिक विधि से उगाना चाहिए।

बरसीम की फसल के सफल उत्पादन हेतु अर्धशुष्क एवं ठंडी जलवायु की आवश्यकता होती है। पौधों के समुचित विकास एवं बढ़वार के समय अत्यधिक ठंड/पाला या सूखा हानिकारक होते हैं। जलमग्न एवं भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में भी इसे नहीं उगाया जा सकता है। कम वर्षा वाले स्थानों पर बरसीम को सिंचाई की सुनिश्चित व्यवस्था होने पर ही उगाया जा सकता है।

बरसीम की खेती प्राय: सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है, किन्तु सामान्यत: भारी दोमट मृदा जिसकी जलधारण क्षमता अधिक हो, फसल की बढ़ोतरी एवं उपज की दृष्टि से सर्वोत्तम मानी जाती है। खेती में सिंचाई एवं जल निकास का उचित प्रबंध अनिवार्य है। हल्की क्षारीय भूमि में भी इसकी खेती की जा सकती हैं, परंतु अम्लीय मृदाओं में बरसीम की खेती संभव नहीं है।

बरसीम की किस्मों को उनमें पाये जाने वाले गुणसूत्र (क्रोमोजोम) की संख्या के आधार पर डिप्लायड एवं टेट्राप्लायड दो भागों में विभाजित करते हैं:

1. डिप्लायड किस्में : इसके अंतर्गत प्रमुख रूप से मस्कावी तथा बरसीम लुधियाना किस्म आती है।
2. टेट्राप्लायड किस्में : टेट्राप्लायड के अंतर्गत प्रमुख रूप से पूसा जायन्ट, टाईप 536, टाइप 678, टाइप 780 आदि।

वरदान (एस-99-1): यह किस्म मुख्य रूप से देश के उत्तरी राज्यों के लिए विकसित की गई है।

बी.एल. 180 : इस किस्म का विकास पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा किया है। यह किस्म पंजाब, उत्तर प्रदेश में उगाने के लिए उपयुक्त है।

बरसीम का बीज आकार में छोटा होता है। अत: सुगम एवं अच्छे अंकुरण हेतु खेत की अच्छी तैयारी आवश्यक है बरसीम की फसल सामान्यत: मक्का, ज्वार, बाजरे या धान की फसलों के बाद उगाई जाती है। बरसीम की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए इसकी बुवाई अक्टूबर के प्रथम पखवाड़े में करना उपयुक्त है। खेत में खरपतावार काफी उगते है। जिसके कारण पौधों के विकास एवं बढ़वार दोनो पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बरसीम की फसल के साथ बुइन (पोआएन्नुआ) कुछ क्षेत्रों में विशेष रूप से उगता है और प्रारंभिक अवस्था में अधिक क्षति पहुंचाता है। इसका उचित उपचार किया जाए। इसके अतिरिक्त आरंभ में बथुआ, खरबथुआ, दूब घास,, कृष्ण नील, जंगली प्याजी, गजरी, सैंजी, कासनी आदि खरपतवार बरसीम की फसल में दिखाई देते हैं। यदि आरंभ में फसल इन खरपतवारों में दब जाती है। अत: जहां तक संभव हो निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को निकाल देना चाहिए।

बरसीम की पैदावार कई घटकों पर निर्भर करती है, जिनमें भूमि का उपजाऊपन उगाई जाने वाली किस्म और फसल की देखभाल प्रमुख है। बरसीम की खेती से प्रति हेक्टेयर लगभग 800-1000 कुंतल तक हरा चारा मिल जाता है। बीज वाली फसल चारा दोनों अच्छी मात्रा में मिल सकते है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बरसीम एक पौष्टिक व उपयोगी हरा चारा है तथा इसकी खेती से किसानों को चारे की उपलब्धता तथा अच्छी आय प्राप्त हो सकती है।

सुदूर संवेदी उपग्रह छविचित्रों द्वारा चरागाह क्षेत्रों का निरूपण एवं प्रबंधन

जे.पी. सिंह, आर.के. अग्रवाल, कमलेश कुमार, नीरज कुशवाहा एवं आर.एस. चौरसिया

सुदूर संवेदन पद्धति द्वारा अंतरिक्ष से पृथ्वी की सतह का निरूपण एवं विश्लेषण किया जाता है। परिभाषित अर्थों में वह तकनीक जिसके द्वारा पृथ्वी की सतह पर उपस्थित आकृति एवं दृश्यों का विश्लेषण, बिना इनके संपर्क में आये किया जाना, सुदूर संवेदन पद्धति कहलाती है। इस पद्धति में विद्युत चुम्बकीय तरंगों का उपयोग होता है जो कि पृथ्वी पर उपस्थित वस्तुओं एवं दृश्यों से परावर्तित होकर अंतरिक्ष में स्थित उपग्रह के संवेदक द्वारा ग्रहण (संवेदित) कर ली जाती है। दूसरे शब्दों में विद्युत चुम्बकीय तरंगे वे तरंगे होती है जो सूर्य के द्वारा पृथ्वी की सतह तक पहुंचती है। ये तरंगे पृथ्वी पर उपस्थित भू-आकृतियों से टकराकर परावर्तित होती है। जो कि परावर्तन के पश्चात् संवेदक द्वारा संवेदित कर ली जाती है। जिसके फलस्वरूप हमें छायाचित्र प्राप्त होते हैं। इस पद्धति का उपयोग प्राकृतिक संसाधनों का निरूपण व उनके प्रबंधन करने एवं पर्यावरण आदि को बचाने में किया जाता है। इसका उपयोग हम उपग्रह छायाचित्र का विश्लेषण करने में तथा मानचित्र बनाने में करते हैं। इस तकनीक के द्वारा की गई गणना अत्यधिक सरल तथा परिशुद्ध होती है। इसके अलावा इस तकनीक का उपयोग करने से हमारे समय और साथ ही पैसों की भी बचत होती हैं।

इस पद्धति में हवाई छायाचित्र एवं उपग्रह छायाचित्र, भू-अध्ययन के लिये जानकारी प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैसे-मृदा का वर्गीकरण, वनस्पति का अध्ययन एवं वनों का वर्गीकरण इत्यादि।

इस सुदूर संवेदन तकनीक में विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम की श्रेणी में बहुत छोटी तरंग गामा किरण से लेकर बहुत लंबी रेडियो तरंगो का उपयोग होता है। विद्युत चुम्बकीय विकिरण के तरंग दैर्ध्य क्षेत्रों के विभिन्न नाम होते हैं, जोकि छोटी तरंग दैर्ध्य से आरंभ होकर गामा किरण एक्स किरण पराबैगनी, दृश्य प्रकाश अवरक्त किरण (इन्फारेड) रेडियों आदि। सुदूर संवेदन उपयोग के लिये प्रकाश तरंग दैर्ध्य क्षेत्र एक अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। जिन्हें अतिरिक्त भागों में बांटा गया है।

नाम	तरंग दैर्ध्य (um)
1. प्रकाश तरंग दैर्ध्य	0.30 - 15.1
2. दृश्य भाग	0.38 - 0.72
3. नियर इन्फारेड	0.72 - 1.30
4. मध्य इन्फारेड	1.30 - 3.00

परावर्तित तरंग दैर्ध्य के आधार पर रंगों का विभिक्तिकरण :

1. 0.45 - 0.52 अवसादन पतझड़ी/शंकुरूपीय वन आवरण भेदन एवं मृदा वनस्पति के लिये संवेदनशील
2. 0.52 - 0.59 स्वस्थ वनस्पति द्वारा हरा परावर्तन, भौल मृदा भेदन एवं उथले पानी के लिये
3. 0.62 - 0.68 पर्णहरित अवशोषण एवं पौधों के प्रकार के भेदन भू-विज्ञान सीमा के लिये संवेदनशील
4. 0.77 - 0.86 हरे बायोमास वनस्पति की नमी, भूमि एवं जल की तुलना करने में तथा भू-आकृतियों के लिये संवेदनशील

वर्गीकरण करने के विधियां :

छायाचित्रों में उपस्थित विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक एवं मानव निर्मित आकृतियों का वर्गीकरण रंगों के माध्यम से सभी पिक्सलों में स्वत: हो जाना छायाचित्र वर्गीकरण कहलाता है। साधारणतय: हम छायाचित्र को उसमें उपस्थित रंगो द्वारा वर्गीकृत करते है। यदि पृथ्वी की सतह पर उथला पानी से गहरा पानी दिखता है तो इसका मतलब है कि छायाचित्र में क्रमश: हल्के नीले रंग से काला रंग हो सकता है। विभिन्न प्रकार की आकृति, विभिन्न डिजिटल संख्या का संयोग होता है, जोकि उनके वर्णक्रमीय परावर्तन और उत्सर्जन के गुणों पर निर्भर करता है। यहां आकृति से आशय है कि विकिरण की मापों का समूह जो प्रत्येक पिक्सल के लिये विभिन्न तरंग दैर्ध्य बैन्ड में से प्राप्त होता है। वर्णक्रमीय आकृति की पहचान से तात्पर्य है कि वर्गीकरण प्रक्रिया का समूह जोकि पिक्सल से पिक्सल की वर्णक्रमीय जानकारी के आधार पर प्राकृतिक भू-आकृति के वर्गीकरण के लिये होता है। इस पद्धति के आधार पर छायाचित्र वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है।

1. सुपरवाइज वर्गीकरण

इस प्रकार के वर्गीकरण में हम छायाचित्रों का विश्लेषण (निरीक्षण) कंप्यूटर (संगणक) की सहायता से करते है। चूंकि संगणक हमेशा आंकिक भाषा को पढ़ता है जोकि उपग्रह छायाचित्र में भी उपस्थित होती है। जिसमें (छायाचित्र में) प्राकृतिक एवं मानव निर्मित भू-आकृतियां पिक्सल मान के रूप में होती है। जिनका विश्लेषण कंप्यूटर की सहायता से आसानी से हो जाता है।

इस विधि में हम व्याख्यात्मक कुंजियों का प्रयोग करते हैं। ये व्याख्यात्मक कुंजियां निम्न प्रकार की होती है।

- रंग
- रूप

- आकार
- संरचना, और
- आकृति

इनकी सहायता से हम विभिन्न प्रकार की आकृतियों या भौगोलिक आकृतियों का वर्णन वर्णक्रमीय तालिका के रूप में कर सकते है।

2. अनसुपरवाइज वर्गीकरण

इस वर्गीकरण में किसी छायाचित्रों के सभी पिक्सल के सभी वर्णक्रमीय हस्ताक्षरों का विश्लेषण कंप्यूटर (संगणक) द्वारा आदेशित होता है एवं इनका प्राकृतिक समूहन होना निर्धारित होता है जोकि उनका समान वर्णक्रमीय हस्ताक्षर के आधार पर पिक्सल का समूह होना कहलाता है। अनसुपरवाइज वर्गीकरण किसी आकृति स्थान में समान खंड के वर्गों के तथ्य पर आधारित होता है। यह प्रक्रिया, वर्णक्रमीय वर्गों को उत्पन्न करने के लिये वर्णक्रमीय हस्ताक्षर पर उपयुक्त को प्रयोग करके की जाती है।

3. उपयुक्त छायाचित्र

पृथ्वी पर वैज्ञानिकों को उपग्रह छायाचित्र डीएन-वेल्यू के रूप में मिलते है। डीएन का मतलब 'डिजीटल नंबर' होता है (यह एक कंप्यूटर भाषा है जिसकी सहायता से कंप्यूटर पर हम उपग्रह छायाचित्रों को सफलतापूर्वक देखक सकते हैं) एक उपग्रह छायाचित्र कई डीएन-वेल्यूस से मिलकर बना होता है। साधारणतया डीएन-वेल्यूस 0 से 255 तक होती है (In 8-bit) यह डीएन-वेल्यूस अगर 0 है तो इसका मतलब उपग्रह छायाचित्र में काला रंग दिखेगा और यदि उपग्रह छायाचित्र में डीएन-वेल्यूस 255 है तो इसका मतलब उपग्रह छायाचित्र में चमकीला सफेद रंग दिखेगा। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते है। कि यदि डीएन-वेल्यू 0 से अधिक और 255 के बराबर या कम होगी तो इसका अर्थ है कि उपग्रह छायाचित्र में क्रमश: चमकीला रंग दिखेगा। उपग्रह छायाचित्र की विशेषता संवेदक विघटन पर निर्भर करती है। स्थानिक विघटन का अर्थ होता है कि जैसे किसी उपग्रह के संवेदक का स्थानिक विघटन 23.5

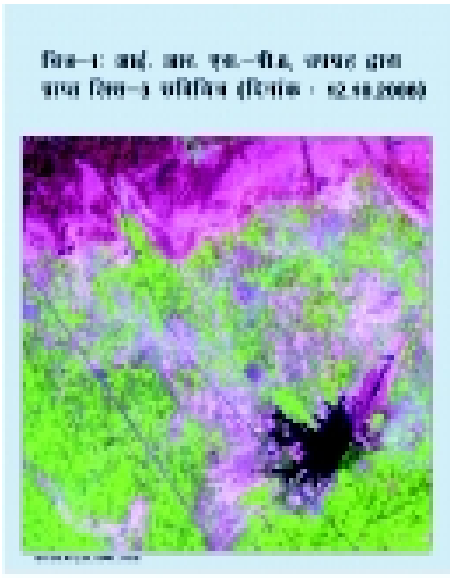

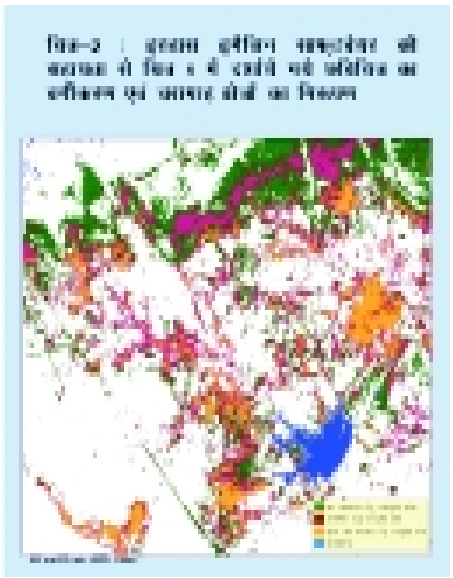

मी. है तो इसका अर्थ है कि पृथ्वी के 23.5 वाले भाग के या उससे अधिक भाग में आने वाली आकृतियों को हम सरलता पूर्वक उपग्रह छायाचित्र में पहचान सकते हैं। इसी प्रकार अगर किसी उपग्रह का स्थानिक विघटन 5.8 मी. है तो इसका अर्थ है कि पृथ्वी के 5.8 मी. या उससे अधिक भाग में आने वाली आकृतियों को हम सरलता पूर्वक अध्ययन कर सकते हैं। अगर मान लीजिए हमें और बेहतर अध्ययन करना है तो हम 1 मी. स्थानिक विघटन का उपग्रह छायाचित्र प्रयोग कर सकते है। उपयोग में आने वाले विभिन्न उपग्रह एवं उनका स्थानिक विघटन सारणी 1 में दिया गया है। हम अपने उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इन उपग्रह छवियों में से आवश्यक छवि को चुनते हैं।

छविचित्रो के माध्यम से चरागाह क्षेत्रों का निरूपण, वर्गीकरण एवं प्रबंधन भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान झांसी द्वारा विगत 15 वर्षों से किया जा रहा है। प्रतीक अध्ययन के रूप में आई.आर.एस. -पी. 6 लिस 3 छविचित्र (चित्र 1) का उपयोग करके सुपरवाइज विधि द्वारा चरागाह क्षेत्रों का निरूपण एवं वर्गीकरण

सारिणी 1: उपग्रह एवं उनका स्थानिक विघटन

उत्पाद का नाम	उपयुक्त संवेदक	विघटन (स्थानिक) (मी. में)
आई. आर. एस. -1ए	लिस - 1	72.5
आई. आर. एस. -1बी	लिस - 1	72.5
	लिस - 2	36.25
आई. आर. एस. -1सी/1डी	लिस - 2	36.25
आई. आर. एस. -पी.6	लिस - 3	23.5
	लिस दृ 1. पैन	5.8
आइकोनास	मल्टीस्पेक्टरल	3.2
	पैन	0.82
वर्ल्ड व्यू.1	पैन	0.55-जी.एस.डी.
वर्ल्ड व्यू. 2	स्टारटेरकस सॉलिड स्टेट (आई.आर.यू.) मल्टीस्पेक्टरल	1.8- जी.एस.डी.

किया गया है। पुन: रास्टर छविचित्रों को वेक्टर में बदलकर आर्कजी.आई.एस. में आंकड़ो का विश्लेषण करके विषयक मानचित्र (चित्र-2) तैयार किया गया है। मानचित्र तथा आंकड़ों के आधार भूमि आच्छादित प्रक्षेत्रों के निरूपण के फलस्वरूप स्थाई परती, बंतर भूमि, अपकृष चारा, चरागाह आदि क्षेत्रों के समुचित उपयोग एवं टिकाऊ उत्पादन हेतु निम्नलिखित प्रबंधन पद्धति का सुझाव दिया गया है।

1. कृषि वन चरागाह
2. वन-चरागाह
3. चरागाह

उपर्युक्त तीनों भूमि उपयोग पद्धतियों में पशुपालन को केंद्र बिंदु मानकर भूमिहीन तथा सीमांत कृषकों के एकीकृत विकास हेतु योजनायें दी जा सकती हैं। उपग्रह सुदूर संवेदी तथा जी.आई.एस. तकनीक के उपयोग द्वारा क्षेत्र अथवा जलागम के आधार पर संतुलित, समन्वित एवं एकीकृत क्षेत्र विकास अब ज्यादा तार्किक एवं भरोसेमंद तरीके से किया जाने लगा है। ❑

हे पृथ्वी! सभी प्राणी तुमसे ही उत्पन्न होकर तुम पर ही विचरण करते हैं। दोपाये और चौपाये सभी का तुम भरण पोषण करती हो। हे पृथ्वी! सभी जीव तुम्हारे ही बनाये हुए हैं। वे मरणशील हैं किंतु प्रतिदिन उगा हुआ सूर्य अपनी रश्मियों से उन्हें अमृतत्व प्रदान करते हैं।

—(अथर्ववेद 12/1/15)

इतने बड़े देश में जहां इतनी भाषाएं हैं वहां देश की एकता के लिए एक कड़ी की आवश्यकता है। कोई भाषा ऐसी हो, जिसे सब तोल सकें, जो एक कड़ी की तरह सबको मिलाजुला कर रख सकें। इसलिए हिंदी को बढ़ावा देना सबका काम है।

—श्रीमती इंदिरा गांधी

हिंदी विश्व की एक महान् भाषा है।

—राहुल सांकृत्यायन

संस्थान की प्रचार-प्रसार गतिविधियां

आर्थिक रूप से टिकाऊ चारा, पशु उत्पादन पर 21 दिवसीय प्रशिक्षण

प्रशिक्षण कार्यक्रम का उदघाटन करते हुए डा. ए.के. श्रीवास्तव, निदेशक राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल हरियाणा एवं मध्य में ग्रासलैंड संस्थान के निदेशक डा. कुमार अमरेन्द्र सिंह एवं बाएं डॉ. एन. दास और डा. ए.बी. मजूमदार

संस्थान में दिनांक 31 अक्टूबर, 08 को आर्थिक रूप से टिकाऊ चारा, पशु उत्पादन पर 21 दिवसीय प्रशिक्षण का आयोजन किया गया जिसका उदघाटन डा. ए.के. श्रीवास्तव, निदेशक राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा ने किया। इस अवसर पर उन्होंने अपने उद्बोधन में आज की आवश्यकता की पूर्ति के लिए दुग्ध उत्पादन बढ़ाने में हरे चारे का उपयोग एवं गुणवत्ता पर प्रकाश डालते हुए भारत की जनसंख्या की आपूर्ति के साथ विश्व बाजार में अधिक धन अर्जित करने का आह्वान किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए संस्थान के निदेशक डा. कुमार अमरेन्द्र सिंह ने फसलों के अवशेष एवं चारा पेड़ों से विषम परिस्थितियों जैसे सूखा एवं बाढ़ के समय कम लागत से अधिक दुग्ध उत्पादन की तकनीकी की जानकारी दी। डा. एन.दास, विभागाध्यक्ष, पादप पशु संबंधित विभाग एवं कार्यक्रम के संयोजक ने प्रशिक्षण कार्यक्रम की विषय वस्तु व रूपरेखा को विस्तार से बताया। इस कार्यक्रम में देश के 14 प्रदेशों, कृषि विश्वविद्यालयों के 29 वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों ने भाग लिया।

भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी के स्थापना दिवस पर कृषकों को बीज वितरण

माह अक्टूबर, 2008 के अंतिम सप्ताह में भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी के स्थापना दिवस पर संस्थान द्वारा विकसित जई एवं बरसीम की चारा फसलों के बीजों के मिनी किट तैयार करके लगभग 200 किसानों को प्रदर्शन हेतु नि:शुल्क वितरित किए गए।

01 नवंबर, 08 को संस्थान के स्थापना दिवस

किसानों को मेंड़ों पर हाथी घास उगाने का सुझाव एवं दुग्ध उत्पादन दुगना करने के बताए गए उपाय

संस्थान ने दिनांक: 1 नवंबर, 2008 को अपना स्थापना दिवस मनाया। इस अवसर पर भव्य किसान मेला, कृषि प्रदर्शनी एवं किसान गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस स्थापना दिवस का आयोजन निदेशक एवं कुलपति राष्ट्रीय दुग्ध अनुसंधान संस्थान करनाल, हरियाणा, डा. अनिल कुमार श्रीवास्तव के मुख्य आतिथ्य में हुआ तथा कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केंद्र, झांसी, डा. एस.के.ध्यानी रहे। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए संस्थान के निदेशक डा. कुमार अमरेन्द्र सिंह ने संस्थान के विकास और उपलब्धियों की विस्तृत आख्या प्रस्तुत की। उन्होंने किसानों को

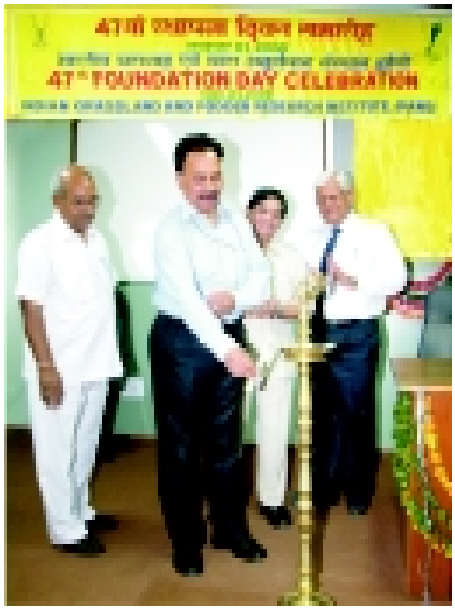

स्थापना दिवस पर उदघाटन करते हुए निदेशक एवं कुलपति राष्ट्रीय दुग्ध अनुसंधान संस्थान, करनाल डा. अनिल कुमार श्रीवास्तव, मध्य में डा. एस.के. ध्यानी दाएं संस्थान के निदेशक डा. कुमार अमरेन्द्र सिंह एवं बाएं ओर डा. यू.पी. सिंह

अपने खेतों की मेड़ों पर चारा उत्पादन के लिए हाथी घास उगाने के लिए आह्वान किया। मुख्य अतिथि ने अपने उद्बोधन में पशुओं को होने वाली बीमारियों को देखकर परखने एवं अच्छे चारे एवं सन्तुलित तरीके से खिलाने पर दुग्ध उत्पादन करने का आह्वान किया। विशिष्ट अतिथि डा. ध्यानी ने टिकाऊ खेती संरक्षण एवं हरित भारत की बात कही। इसी क्रम में दूसरे विशिष्ट अतिथि एवं प्रगतिशील किसान श्री पूरन लाल शर्मा ने संस्थान से विकसित तकनीकी की भूरि-भूरि सराहना करते हुए संस्थान की तकनीकी जानकारी को किसानों तक पहुंचाने का निर्णय लिया। अन्य वक्ताओं में डा. ओ.पी. चतुर्वेदी, डा. एस.एन चौरसिया, डा. सुनील तिवारी इत्यादि ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर

जिला ललितपुर उ.प्र. की कार्यशाला में किसानों की मक्का फसल का अवलोकन करते हुए संस्थान के कार्यकारी निदेशक डा. एस. बी. त्रिपाठी वैज्ञानिकगणों के साथ।

जिला टीकमगढ़ म.प्र. मक्का फसल पर किसानों से परिचर्चा करते हुए संस्थान के कार्यकारी निदेशक डा. एस.बी. त्रिपाठी मध्य में, साथ में संस्थान के वैज्ञानिकगण एवं अन्य अधिकारी गण

संस्थान में उत्कृष्ट कार्य करने वाले वैज्ञानिकों, तकनीकी एवं प्रशासनिक अधिकारियों को प्रशस्ति पत्र वितरित किए गए। साथ ही किसानों को विभिन्न फसलों के बीजों को नि:शुल्क वितरित किया गया। कार्यक्रम का संचालन डा. पंकज कौशल एवं साधना पाण्डेय एवं डा. आर. बी. भास्कर एवं महाराज सिंह ने आभार प्रदर्शित किया।

कृषक कार्यशाला गोष्ठी एवं प्रदर्शनी का आयोजन

दिनांक 24 दिसंबर, 2008 को ग्राम खांदी, तालबेहट, जिला ललितपुर उ.प्र. में तथा 30 दिसंबर 2008 को ग्राम राधापुर, जिला टीकमगढ़, म.प्र. में मक्का अग्रिम पंक्ति परियोजना के अंतर्गत संस्थान द्वारा एक कृषक कार्यशाला एवं गोष्ठी का आयोजन संस्थान के निदेशक डा. कुमार अमरेन्द्र सिंह के निर्देशन में किया गया। उक्त कार्यशाला में विभिन्न जिले ललितपुर, झांसी, टीकामगढ़, दतिया, एवं शिवपुरी के चौदह गांवों से आए हुए कृषक बंधुओं ने भाग लिया। किसानों ने उक्त कार्यशाला गोष्ठी में मक्का की फसल उत्पादन के विभिन्न पहलुओं पर वैज्ञानिकों तथा राज्य सरकार के अधिकारियों से विस्तार से चर्चा की। साथ ही मक्का की फसल उत्पादन विषय पर भविष्य की रणनीति खरीफ, रबी एवं जायद में मक्का की खेती पर अपने विचार रखे। कार्यशाला को संबोधित करते हुए संस्थान के कार्यकारी निदेशक डा. एस.बी. त्रिपाठी ने मक्का की फसल उत्पादन से संबंधित वैज्ञानिक तौर तरीके अपनाने पर बल दिया। इन गोष्ठियों में संस्थान के वैज्ञानिकगण डा. बी.के. त्रिवेदी, डा.एस.एन. त्रिपाठी, डा.आर.बी. भास्कर एवं डा. मलैया स्वामी ने मक्का की फसल पर किसानोपयोगी महत्वपूर्ण जानकारी दी। इस अवसर पर मक्का की खेती पर एक बुलेटिन का विमोचन भी किया गया। गोष्ठी में जिला ललितपुर कृषि विज्ञान केंद्र के प्रभारी, डा. ए. के. चौहान ने मछली पालन तथा केंद्र की विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रामों के बारे में उपयोगी सुझाव दिए। इस परियोजना के समन्वयक डा.आर.एन. द्विवेदी के संयोजन में उक्त कार्यशाला गोष्ठियां सफलतापूर्वक आयोजित हुई। कार्यक्रम का संचालन डा. महाराज सिंह तथा आभार श्री जे.पी. उपाध्याय द्वारा ज्ञापित किया गया।

❑

भारतीय भाषाएं नदियां हैं और हिंदी महानदी। हिंदी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती है। हमें इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना ही चाहिए। मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि हिंदी बिना हमारा काम चल नहीं सकता।

—रवीन्द्र नाथ ठाकुर

उत्तर और दक्षिण भारत का सेतु हिंदी ही हांक सकती है।

—प्रो. चन्द्रहासिन

पाठकों/किसानों के विचार

चारा पत्रिका का पिछला अंक मिला, इस हेतु आपका धन्यवाद। मेरी गणना चारा पत्रिका के नियमित पाठकों में की जा सकती है। यह पत्रिका चारा विषयक भरपूर जानकारी तो कराती ही है, और चारे के अलावा खेतीवाड़ी, बागवानी, फलवृक्षों के कलमी पौधों तैयार करने, वर्मीकम्पोस्टिंग, पशुपालन, भूमिक्षरण, पर्यावरण आदि विषयों को अपने में स्थान देकर दिनोदिन एक बहुआयामी पत्रिका बनती जा रही है जिसे एक शुभ संकेत कहा जाएगा। हिंदी के प्रचार-प्रसार की दिशा में पत्रिका का दृढ़ संकल्प सराहनीय ही नहीं, अप्रतिम भी कहा जाएगा। पत्रिका से जुड़े सभी लोग धन्यवाद के पात्र हैं।

जगन्नाथ सिंह
डी.ए.ओ. (सेवानिवृत)
ग्राम-सिकरहुला, पोस्ट-कोरिया, रैवतपुर,
वाया-मंझौल, जिला-बेगुसराय- 851127

आपके द्वारा प्रकाशित चारा पत्रिका देखने को मिली। यह पत्रिका गागर में सागर भरने की तरह है तथा सभी वर्ग के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। यदि संभव है तो पत्रिका की प्रति मेरे महाविद्यालय के पते पर भी भेजने की कृपा करें। ताकि नई-नई जानकारियां एकत्रित की जा सकें।

डा. (श्रीमती) साधना खरे
वनस्पति विभाग
शा.वि.रा.सिं. महाविद्यालय, भान्डेर, जिला
-दतिया म.प्र.

चारा पत्रिका में प्रकाशित संस्थान द्वारा विकसित उद्यान चारा उत्पादन तकनीकी की जानकारी मुझे विशेष लाभकारी लगी। आशा है इस विषय पर समय-समय पर और जानकारी प्रकाशित होती रहेगी।

दीपक पुत्र श्री धर्म सिंह सरपंच
ग्राम व पोस्ट सुभरी,
जिला-करनाल (हरियाणा)

सामान्यता चारा फसलों की उन्नत प्रजातियों के बारे में जानकारी न होने से हम किसान भाइयों को काफी असुविधा का सामना करना पड़ता है। इस पत्रिका के माध्यम से चारा फसलों की प्रमुख उन्नतशील प्रजातियों का चयन करने में अत्यंत लाभ मिलता है।

संजय कुमार सिंह,
ग्राम-संग्रामपुर पोस्ट-पुरूषोत्तमपुर
जिला- मुंगेर (बिहार)

चारा उत्पादन, उनके संरक्षण एवं पशुपालन से संबंधित विषय सामग्री के एक साथ प्रकाशन से किसानों के मार्गदर्शन में यह चारा पत्रिका काफी लाभप्रद है।

सुरेन्द्र पाल पुत्र श्री साहिब सिंह
ग्राम व पोस्ट गुधा (लड़वा)
जिला- कुरूक्षेत्र (हरियाणा)

विभिन्न मौसम में उगाई जाने वाली चारा फसलों के बारे में जानकारी से भविष्य के कार्यक्रम बनाने में यह चारा पत्रिका पथ प्रदर्शन का कार्य करेगी।

शशिकांत कुमार पुत्र श्री कृष्ण प्रसाद वर्मा
ग्राम व पोस्ट श्री चन्दपुर (बिहटा)
जिला-पटना (बिहार) पिन- 801111

हम चाहते हैं कि अन्य जानकारियों के साथ-साथ संस्थान में समय-समय पर किसानों के लिए आयोजित किए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों की जानकारी भी इस चारा पत्रिका में प्रकाशित हो। ताकि किसान भाई इसका भरपूर लाभ उठा सकें।

परमहंस सिंह
काशी गोशाला, ग्राम व पोस्ट-बावन बीघा
वाराणसी (उ.प्र.)

घर के आंगन में जैसे तुलसी दल या सुहागन के भाल पर बिंदी, देवता के मुकुट पे जैसे फूल वैसे ही भारत के भाल पर हिंदी।

—गोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव

संस्थान में पशु वीर्य (सीमेन) की उपलब्धता

संस्थान में वर्तमान में भदावरी भैंस के वीर्य की 2000 डोजेज उपलब्ध हैं

संपर्क करें-

निदेशक

भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान

झांसी 284003 (उत्तर प्रदेश)

भा. चरा. एवं चारा अनु. सं., झांसी में उत्तम श्रेणी का बीज बिक्रय हेतु उपलब्ध

बीज/प्रजाति	उपलब्धता (कुंतल)		दर रु. (प्रति कि.ग्रा.)	
	जनक	टी.एफ.एल.	जनक	टी.एफ.एल.
1. लोबिया				
- ई.सी.-4216	14.00	3.50	49.50	25.0
- बी.एल.-1	1.70	2.25	49.50	25.0
- बी.एल.-2	9.20	-	49.50	-
- कोहिनूर	0.60	-	49.50	-
2. ज्वार				
- एम.पी चरी	7.00	1.50	41.80	18.0
- पी.सी.-6	-	6.00	-	18.0
3. जई				
- केन्ट	1.00	5.00	35.00	12.00
-जे.एच.ओ.-822	0.40	22.00	35.00	12.00
-जे.एच.ओ.- 851	-	1.00	-	12.00
4. बरसीम				
-वरदान	-	0.50	-	90.00
-जे.एच.बी-146	6.70	0.40	220.00	90.0
-बुन्देल बरसीम-3	3.50	-	220.00	-
5. घास बीज				
-दीनानाथ घास	-	5.62	-	120.00
-गिनी घास	-	1.35	-	325.00
-धामन घास	-	0.74	-	110.00
-अंजन घास	-	0.20	-	150.00

संपर्क करें-

निदेशक

भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान

झांसी 284003 (उत्तर प्रदेश), दूरभाष : 0510- 2730666, फैक्स : 0510 -2730833